असग़र वजाहत
जिस लाहौर नइ देख्या
ओ जम्याइ नइ

21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

द्वारा प्रकाशित

फोन : 0091#11#23273167, 23275710

फैक्स : 0091#11#23275710

ई-मेल : vaniprakashan@gmail.com

vani_prakashan@yahoo.com

वेबसाइट : www.vaniprakashan.com

प्रथम संस्करण : 2010

आवरण : वाणी प्रकाशन

JIS LAHORE NAI DEKHYA O

JAMYI NAI (PLAY)

Play by : Asgar Bazahat
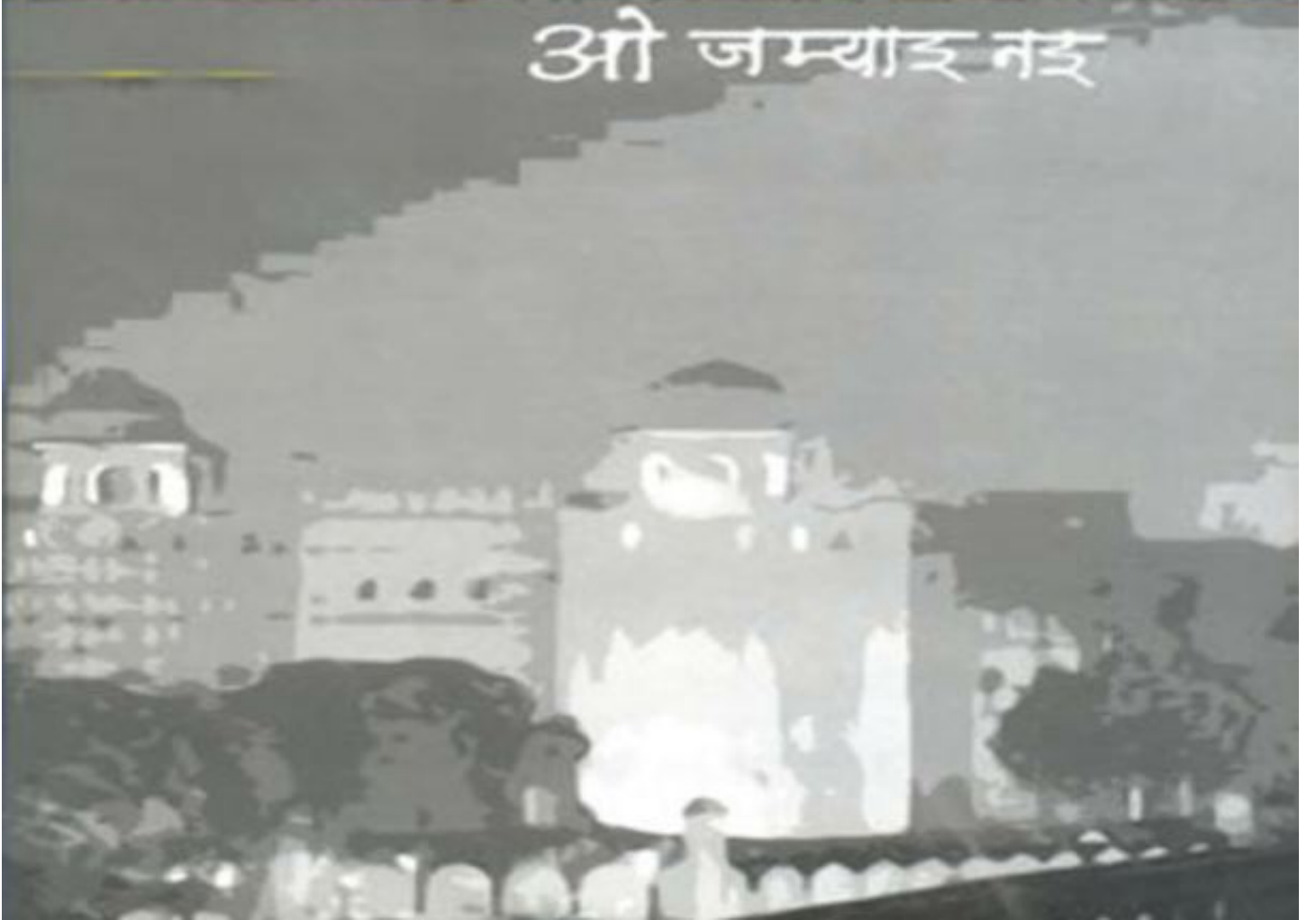
वाणी प्रकाशन का 'लोगो'

विख्यात चित्रकार मक़बूल फ़िदा हुसेन की

कूची से

ISBN : 978-93-5000-313-8

भूमिका

आज़ादी के बाद हिन्दी में लिखे और मंचित किए गये महत्वपूर्ण नाटकों में "जिस लाहौर नही देख्या ओ जम्याइ नइ' का उल्लेख किया जाता है। इस नाटक का अनुवाद और मंचन कन्नड़, गुजराती, मराठी, पंजाबी, उर्दू तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हो चुका हैं। इसे प्रसिद्ध रंगकर्मियों जैसे हबीब तनवीर, वामन केन्द्रे, दिनेश ठाकुर, रमेश आर., कन्टेश के. आदि ने किया है। इस नाटक के मंचन भारत के लगभग सभी प्रमुख शहरों के अतिरिक्त वाशिंग्टन डी.सी., सिडनी, लाहौर, कराची और दुबई में हो चुके हैं। यह नाटक पिछले बीस वर्षों से लगातार अलग-अलग नाट्य मण्डलियों द्वारा मंचित किया जा रहा है।

इस नाटक की पहली प्रस्तुति 22 सितम्बर 1990 को प्रख्यात रंगकर्मी हबीब तनवीर के निर्देशन में, श्रीराम सेंटर फॉर परफार्मिंग आर्ट्स में की गयी थी। श्रीराम सेन्टर ने देश के विभिन्न शहरों में इसके लगातार सैकड़ों प्रदर्शन किए थे। इस बीच कराची के रंगकर्मी खालिद अहमद ने इसका प्रदर्शन कराची में किया था। चूंकि खालिद अहमद को कराची के पुलिस कमिश्नर ने नाटक प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी थी इसलिए यह नाटक कराची के जर्मन सूचना केन्द्र 'गोथे सेन्टर' में किया गया था। कराची में खालिद अहमद के निर्देशन में प्रस्तुत नाटक प्रेस तथा मीडिया द्वारा अत्यंत सराहा गया था और इसके शो 'हाउस-फुल' हुआ करते थे।

1994 में प्रसिद्ध प्रवासी हिन्दी लेखक, ब्राडकास्टर तथा रंगकर्मी उमेश अग्निहोत्री ने इस नाटक का मंचन वाशिंग्टन डी.सी. में किया था। उमेश अग्निहोत्री के अनुभवी और परिपक्व निर्देशन में यह नाटक बहुत सफलता से मंचित किया गया था। इसके प्रदर्शन अमरीका के अन्य शहरों में भी किए गये थे। उमेश अग्निहोत्री की रंग मण्डली में भारत, पाकिस्तान और बंग्लादेश के प्रवासी कलाकारों ने मिल कर काम किया था। इस मंचन पर मीडिया ने विशेष ध्यान दिया था तथा महत्वपूर्ण समीक्षाएँ प्रकाशित हुई थी।

1991 में उर्दू की एक महत्वपूर्ण पत्रिका 'ज़ेहने जदीद' ने जिस लाहौर...' को उर्दू में प्रकाशित किया था। पत्रिका द्वारा आयोजित श्रेष्ठ रचना चयन में इस नाटक को पाठको ने वर्ष की श्रेष्ठ रचना माना था। उर्दू लिपि में यह नाटक अन्य पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुआ है।

मराठी के विख्यात रंगकर्मी वामन केन्द्रे ने 'जिस लाहौर...' का मंचन मराठी में किया था। वामन केन्द्रे के अनुसार बाबरी मस्जिद तोड़े जाने, बम्बई के बम धमाकों तथा साम्प्रदायिकता की पृष्ठभूमि में इस नाटक का पाठ कैफ़ी आज़मी साहब के घर पर किया गया था। इसके पाठ करने वालों में शबाना आज़मी भी शामिल थीं। पाठ के बाद यह विचार किया गया था कि नाटक को वर्तमान परिस्थितियों से कैसे जोड़ा जा सकता है? इस बातचीत के दौरान मराठी के प्रसिद्ध नाटककार और पत्रकार शफात खान ने इस नाटक को तात्कालिक प्रसांगिकता देने की जिम्मेदारी ली थी। यह दरअसल उस समय की एक बहुत बड़ी माँग थी। चूंकि उन दिनों मैं योरोप में था इसलिए इस विचार मंथन में मैं मराठी निर्देशक वामन केन्द्रे की कोई साहायता नहीं कर सकता था। मराठी में 'जिस लाहौर...' के काफी शो हुए और दर्शकों तथा प्रेस से बहुत अच्छी प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुयीं।

मराठी प्रदर्शनों के बाद नाटक का गुजराती में अनुवाद किया गया और कुछ प्रदर्शन गुजराती में भी हुए। गुजराती के बाद इसका अनुवाद कन्नड़ भाषा में किया गया। यह अनुवाद प्रसिद्ध रंगकर्मी बा. व. कारंत ने प्रारंभ किया था पर वे इसे पूरा नहीं कर सके। यह अनुवाद श्री.डी.एन. श्रीनाथ ने पूरा किया और इसे प्रकाशित किया गया। अनुवादक को कन्नड़ भाषा में नाटक के शीर्षक का अनुवाद करना कुछ अटपटा लगा। और यह भी सोचा गया कि कन्नड़ में पंजाबी की इस उक्ति 'जिस लाहौर...' को समझ पाना कठिन होगा। इस कारण कन्नड़ में 'जिस लाहौर...' का नामकरण किया गया 'रावी क्निारें' और इसके कई प्रदर्शन हुए, जिसका निर्देशन रमेश एस.आर. ने किया। कर्नाटक की एक बोली धारवी में 'जिस लहौर...' का अनुवाद प्रो. तिप्पेस्वामी ने किया और इसका निर्देशन कन्टेश के. ने किया था। कन्नड़ प्रस्तुतियों को भी दर्शकों ने बहुत पसन्द किया था और नाटक की सार्थक और गंभीर समीक्षाएँ प्रकाशित हुई।

विभाजन की त्रासदी कर्नाटक की जनता का भोगा हुआ यथार्थ नहीं है और न वहाँ से विभाजन के बाद उस प्रकार का

विस्थापन हुआ था जैसा पंजाब, गुजरात, हरियाणा, उ. प्र. आदि उत्तर भारत के प्रांतों से हुआ था। इस कारण कन्नड़ में 'जिस लाहौर...' की लोकप्रियता यह स्थापित करती है कि नाटक की कथा वस्तु और उसकी केन्द्रीय संवेदना के कुछ ऐसे पक्ष हैं जो सर्वव्यापी कहे जा सकते हैं। यह नाटक विभाजन की त्रासदी के अतिरिक्त एक स्तर पर मानवीय संबधों की दास्तान भी है जो संस्कृतियों के बीच समन्वय और सामंजस्य स्थापित करने की सशक्त वकालत करती है और नाटक मानवीय सम्बन्धों तथा रिश्तो की गहरी पड़ताल करता है।

पंजाब में 'जिस लाहौर...' का अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। नाटक का न केवल पंजाबी में अनुवाद हुआ बल्कि इसके बहुत सफल प्रदर्शन पंजाब में किए गये। लुधियाना के निर्देशक तरलोचन सिंह ने पंजाब के कई शहरों में इसके प्रदर्शन किए। पंजाब के कई जिलों में पाकिस्तान की एक स्वय सेवी संस्था 'तहरीके निस्वां' ने भी इस नाटक के एक दर्जन से अधिक प्रदर्शन किए हैं। पंजाब के लगभग सभी शहरों में यह नाटक मंचित हुआ है और दर्शकों ने सराहा है।

1998 के आसपास मुम्बई प्रसिद्ध रंगकर्मी दिनेश ठाकुर ने 'जिस लाहौर...' मंचित करने के सम्बन्ध में पहल की। दिनेश ठाकुर अनुभवी और प्रतिबद्ध रंगकर्मी अभिनेता और निर्देशक हैं। उनकी रंगमण्डली 'अंक' संभवत : हिन्दी की पहली रंगमंडली है जो 'प्रोफेशनल' तरीके से रंगकर्म में जुटी हुई है। पिछले दस साल से दिनेश ठाकुर 'जिस लाहौर...' बराबर कर रहे हैं। मुम्बई के अतिरिक्त वे यह नाटक महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों के सैंकड़ों छोटे बड़े शहरों में कर चुके हैं। देश में जिस बड़े स्तर पर विभिन्न रंग मण्डलियों द्वारा इस नाटक का मंचन किया गया है उसका पूरा लेखा-जोखा, उपलब्ध नहीं है लेकिन देहरादून में इस नाटक को जुल्फिकार आलम मंचित करते रहते हैं नैनीताल में निर्देशक ज़हूर आलम ने भी इस नाटक के सफल प्रदर्शन किए हैं।

'जिस लाहौर...' का लेखन 1980 के आसपास प्रारंभ हुआ था। उर्दू के वरिष्ठ पत्रकार संतोश कुमार जी का परिवार विभाजन से पहले लाहौर का स्थाई निवासी था। विभाजन के बाद यह परिवार दिल्ली चला आया था। लाहौर में हुए 1947 के दंगों में सन्तोश कुमार जी के भाई...की हत्या कर दी गयी थी। दरअसल यह हत्या हज़ारों निदोंश लोगों की हत्याओं का प्रतीक

है जो साम्प्रदायिक उन्माद और हिंसा का शिकार हुए थे। यह नाटक कृष्ण कुमार गुर्टु को और उन सब बेगुनहों को समर्पित है जो राजनेताओं द्वारा सत्ता प्राप्त करने के लिए फैलाए गये साम्प्रदायिक घृणा और हिंसा के कारण मारे गये थे। संतोश जी को विभाजन के कई दशक बाद लाहौर जाने का अवसर मिला था। वहाँ से लौट कर उन्होंने 'लाहौर नामा' नाम से एक यात्रा संस्मरण प्रकाशित किया था। इस पुस्तक में उन्होंने विभाजन के बाद लहौर में रह गयी एक बूढ़ी औरत के बारे में लिखा है। इस प्रसंग से नाटक लिखने की प्रेरणा मिली थी और धीरे-धीरे नाटक का स्वरुप बनता चला गया था।

मेरे मन में सवाल यह आया कि पूरे लाहौर में एक हिन्दू बुढ़िया रह गयी थी और उसके साथ मोहल्ले वालों के बड़े आत्मीय सम्बन्ध थे तो मोहल्ले में कुछ ऐसे कट्टरवादी लोग भी हो सकते हैं जो इस हिन्दू बुढ़िया को नापसन्द करते होंगे। धीरे-धीरे नाटक के खलनायक याकूब पहलवान का चित्र उभरने लगा। यह भी लगा कि नाटक में द्वंद्व का तत्व इस पात्र के बिना उभर नहीं सकता।

भारत विभाजन उत्तर भारत की एक भयावह त्रासदी थी। इसके परिणामस्वरुप लोगों को जिस तरह की हिंसा का सामना करना पड़ा; जितनी अमानवीय, क्रूर अपमानजनक स्थितियों से गुजरना पड़ा वैसा शायद भारत के आधुनिक इतिहास में इससे पहले कभी नहीं हुआ था। इधर से उधर जाने-आने वाले परिवारों के पास इस तरह के अनेक अनुभव है। मेरे एक सम्बन्धी का अनुभव इस नाटक में कहीं से आकर इस तरह शामिल हुआ कि इससे नाटक को नया मोड़ मिल गया। नाटक का एक सशक्त पक्ष मुखर हो गया। हिन्दुस्तान में विभाजन से पहले बड़ी ऊँची सरकारी नौकरी करने वाले मेरे सम्बन्धी जब पाकिस्तान पहुँचे तो उन्हें खुश करने के लिए कस्टोडियन वालों ने उन्हें एक ऐसी कोठी एलाट कर दी जो एक सम्पन्न हिन्दू परिवार की थी और किसी तरह लूटपाट से भी बच गयी थी। मामू जब कोठी देखने गये तो उन्होंने देखा कि खाने के कमरे में मेज़ पर प्लेटें लगी हैं। बच्चों के कमरे में खिलौने बिखरे पड़े हैं। ऑगन में संगे-मरमर के चबूतरे के बीच एक बड़े से गमले में तुलसी का सूखा पौधा लगा है। ये सब देख कर वे डर गये और उन्होंने कस्टोडियन वालों से कहा कि मुझे फौरन वापस ले चलो। मैं यहाँ एक मिनट नहीं ठहर सकता। कस्टोडियन वाले हैरत में पड़ गये। लेकिन उन्होंने कोठी लेने की

बात तो दूर रही, एक मिनट वहाँ ठहरने तक से इंकार कर दिया।

शायद इन्हीं अप्रत्यक्ष अनुभवों के आलोक में हमीदा बेगम एक टोकरी कोयले देने से पहले माई से इजाज़त लेती है।

पंजाबी भाषा और संस्कृति से मेरा परिचय कराया फ़िल्मकार और मित्र परवीन अरोड़ा और पत्रकार गुरुचरन ने। परवीन ने नाटक के संवादों में मदद की और गुरुचरन ने लाहौर को समझने के सिलसिले में बहुत सहायता की। गुरुचरन एक ऐसे आदमी को खोज लाये जो लाहौर में बिजली के मीटरों की रीडिंग किया करता था और विभाजन से पहले वाले लाहौर का पूरा नक्शा उसके दिमाग़ में था। ऐसे बहुत से लोगों से मिला और बातचीत हुई जो लाहौर से विभाजन के बाद इधर आ गये थे।

इन्हीं दिनों उर्दू कवि नासिर काज़मी की शायरी पढ़ रहा था। वह इंटरव्यू भी पढ़ा जो उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ पहले अपने मित्र और अब उर्दू के जाने-माने कहानीकार इंतिज़ार हुसैन को दिया था। शायरी और इंटरव्यू से नासिर काज़मी की जो छवि बनती है वह एक ऐसे कवि की है जिसने अपना समानान्तर संसार रच लिया है। अचानक सोचा क्यों न नासिर काज़मी को एक पात्र के रूप में नाटक में डाल दिया जाये। नासिर काज़मी उन्हीं दिनों लाहौर में थे जब बूढ़ी हिन्दू औरत वाला प्रसंग घट रहा था। नासिर काज़मी अदरअसल नाटक में विभाजन का सांस्कृतिक प्रतिरोध बन गये हैं। वे लखनऊ से आये सिकन्दर मिर्ज़ा के परिवार की त्रासदी को एक नया आयाम देते हैं। नाटक पात्रों के माध्यम से तीन प्रकार के 'वर्ल्डव्यू' यानी संसार को देखने और समझने के तरीकों को समाहित करता है। पहला दृष्टिकोण नासिर काज़मी का है जो नितांत काव्यात्मक है लेकिन यह काव्यात्मकता कोरी कल्पना नहीं है। इसके माध्यम से जीवन और जगत के रिश्तों, स्थूल और भौतिक परिस्थितियों को समझा जा सकता हैं। नासिर काज़मी मानवीयता के समर्थक हैं। और मनुष्य को धर्म, जाति, देश, समाज, भाषा आदि से ऊँचा और श्रेष्ठ मानते हैं उनकी संवदेनशीलता और तर्क क्षमता झूठ और सच को एक दूसरे से पूरी तरह अलग कर देती है। नासिर के विचार दरअसल इस महाद्वीप में विकसित और स्थापित उन मूल्यों पर आधारित है जो धार्मिक सहिष्णुता और मानववाद को स्थापित करते हैं।

दूसरा दृष्टिकोण मौलवी इकरामउद्दीन के माध्यम से सामने आता है। यह विशुद्ध इस्लामी जीवन दर्शन है लेकिन इसमें

कोई घाल-मेल नहीं है। मौलवी केवल पवित्र कुरान और हदीस के आलोक में जीवन और जगत की व्याख्या करता है। यह व्याख्या इस्लाम की आड़ में अपना निहित स्वार्थ सिद्ध करने वाले पहलवान याकूब खां के रास्ते में बाधा बन जाती है।

सिकन्दर मिर्ज़ा हमीदा बेगम और माई (रतन की माँ) के माध्यम से एक तीसरा 'वर्ल्डव्यु' सामने आता है। ये लोग न तो कवि हैं, न धर्म के बहुत गहरे मर्म को समझते हैं और न उनके पास किसी तरह की बड़ी 'विज़डम' या 'विज़न' है। इन लोगों ने परम्परा के आलोक में जीवन जीना सीखा है। बड़े-बड़े शब्दों और आदर्शों की बातें नहीं करते पर इनका 'वर्ल्डव्यु' सहयोग, सहभागिता, दूसरे को सम्मान देने और हँसी खुशी जीवन बिता देने वाला 'वर्ल्डव्यु' है।

नाटक में माई (रतन की माँ) से लखनऊ से आये सिकन्दर मिर्ज़ा का टकराव नाटक का पहला द्वंद्व बिन्दु है। सिकन्दर मिर्ज़ा को जान बूझ कर लखनऊ का दिखाया गया है क्योंकि लखनऊ और लाहौर के बीच सांस्कृतिक भिन्नता भी नाटक में एक प्रभाव पैदा करती है। जिस तरह लखनऊ अपनी नज़ाकत नफ़ासत, रवादारी, तकल्लुफ़ और शिल्प की बारीकियों के लिए जाना जाता है उसी तरह लाहौर अपनी बेतकल्लुफ़ी, उन्मुक्तता, सौहार्द, मस्ती, आनंद और श्रेष्ठता के लिए विख्यात है। इन दो संस्कृतियों के बीच से नाटक में मानवीय सम्बन्ध को स्थापित करना तथा उसके माध्यम से इनका करीब आना कथानक को अर्थपूर्ण बनाता है।

नाटक में मौलवी इकरामउद्दीन का चरित्र इस कथारुढ़ि को तोड़ता है कि मुल्ला या पंडित महेशां खलनायक होते हैं। दरसअल नाटक का मौलवी सीधा-सच्चा धर्म पर विश्वास करने वाला पात्र है। वह धर्म की राजनीति से दूर है। धर्म वास्तव में उस समय दूषित हो जाता है जब उसमें राजनैतिक सत्ता आकर जुड़ जाती है। धर्मों का इतिहास हमें यह बताता है कि धर्म आध्यात्मिक विश्वासों और आचार व्यवहार के आधार पर लोगों को अच्छा मनुष्य और सामाजिक प्राणी बनाने के उद्देश्य से संगठित करता है लेकिन एक बार जब लोग संगठित हो जाते हैं, उनके पास शक्ति आ जाती है तब सत्ता की कामना करने वाले इस शक्ति का प्रयोग सत्ता में आने या बने रहने के लिए करने लगते हैं। नाटक का मौलवी धर्म द्वारा अर्जित सत्ता का हिस्सा नहीं है और यही काण है कि वह धर्म को धर्म की तरह लेता है,

राजनीति नहीं करता। नाटक के अंत में मौलवी की हत्या दरअसल धर्म की हत्या नहीं है। यह धार्मिकता की जीत है। क्योंकि जब मौलवी के विरोधी तर्क और ज्ञान से पराजित हो जाते हैं तो हिंसा का सहारा लेते हैं। नाटक में मौलवी से पहलवान और उसके समर्थक हार गये हैं और मौलवी की हत्या कर देते हैं। मौलवी के मरने बाद उसके विचारों की श्रेष्ठता को स्थापित होती है और इस कारण विजयी होता है।

मैं निर्देशक को पूरी स्वतंत्रता देने का पक्षधर हूँ और मानता हूँ समर्थ तथा बुद्धिमान निर्देशक नाटक के आलेख की आत्मा को पूरी तरह समझ कर उसे और अधिक प्रभावशाली बनाने की दिशा में काम करता है। हबीब तनवीर एक योग्य, अनुभवी और समर्थ, निर्देशक ही नहीं है बल्कि इस नाटक के पात्रों तथा घटनाओं की भी उन्हें गहरी जानकारी और समझ है। स्वयं कवि के रुप में अपनी रचना यात्रा शुरु करने वाले हबीब तनवीर के लिए नाटक के पात्र नासिर काज़मी को समझना और उसे बुलंदी पर ले जाना दूसरे निर्देशकों की तुलना में आसान था। हबीब साहब ने नाटक के मूल आलेख में नासिर काज़मी की जो ग़ज़ले नाटक के बीच में थीं उन्हें हटा कर दृश्यों के अंत में डाल दिया था और ये ग़ज़लें दृश्य विशेष के भावनात्मक प्रभाव को स्थापित करने में कारगर सिद्ध लगीं। लेकिन हबीब साहब ने नाटक के दूसरे दृश्य को कॉमडी बना दिया था जबकि यह कॉमडी नहीं है। पहला दृश्य न केवल गंभीर है बल्कि नाटक के एक बुनियादी द्वंद्व बिन्दु को उद्घाटित करता है और दर्शक पूरी तरह इस द्वंद्व से बंध जाते हैं। दर्शकों पर यह प्रभाव इतना गहरा पड़ता है कि वे इसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते और द्वंद्व का अगला चरण देखना चाहते हैं जो दूसरे दृश्य में है। लेकिन दूसरे दृश्य को हास्य बना देने के कारण हबीब की प्रस्तुतियों में नाटक का प्रभाव कम होता लगता है। बल्कि नाटक अपने 'ट्रैक' से अलग जाता भी दिखाई देता है।

श्रीराम सेन्टर की 'रिपैट्री' के साथ कुछ साल नाटक के लगातार प्रदर्शन करने के बाद और नाटक की लगातार माँग के मद्देनज़र हबीब तनवीर ने श्रीराम सेन्टर की 'रेपैट्री' से यह नाटक ले लिया और अपने ग्रुप 'हिन्दुस्तानी थियेटर' के कालकारों के साथ इसे तैयार किया। श्री राम सेन्टर की रिपैट्री द्वारा नाटक के मंचन शुरु होने के बाद 1992 में, मैं हिन्दी और उर्दू पढ़ाने बुदापैश्त, हंगरी चला गया था और पूरे पाँच साल के बाद वापस

आया। वापस आकर मैंने हबीब तनवीर के ग्रुप हिन्दुस्तानी थियेटर का प्रोडक्शन 'जिस लाहौर...' देखा तो मैं हतप्रभ रह गया। हबीब साहब की टोली में प्रायः सभी अभिनेता लोक कला कर्मी हैं जो पूरी तरह किसी लोक नाटक को प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। बहुत अच्छे कलाकार है। 'जिस लाहौर...' लखनऊ और लाहौर की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। यह नाटक जब मध्य प्रदेश के लोक कलाकारों ने किया तो निश्चित रूप से बात बन नहीं सकी लेकिन इसके कारण हबीब तनवीर का महत्व तथा उनके योगदान को कम नहीं आंका जा सकता। हबीब तनवीर श्रेष्ठ निर्देशक और प्रतिमा सम्पन्न वरिष्ठ रंगकर्मी है। उन्होंने 'जिस लाहौर...' का जितना बढ़िया प्रोडक्शन श्री राम सेन्टर की 'रिपैट्री' के साथ किया था वैसा अब तक संभवतः कोई निर्देशक नहीं कर सका है। इस नाटक को लोकप्रिय बनाने का श्रेय भी उन्हें देना चाहिए। लेकिन लोक कलाकार 'जिस लाहौर...' को चला न सके और अंततः हबीब तनवीर ने उसे बंद कर दिया।

1992 में खालिद अहमद ने कराची के गोथे सेन्टर में जो प्रोडक्शन किया था, वह मैं देख नहीं सका। इसके बारे में खालिद से टेलीफोन पर बातचीत होती थी और हमारे बीच सलाह-मशविरा होता रहता था। खालिद ने बताया था कि कराची के पुलिस कमश्निर के ऑफिस ने नाटक खेले जाने की दरख़ास्त को नामंजूर करने के तीन कारण बताये थे। पहला कारण यह बताया था कि नाटक में मौलवी की हत्या कर दी जाती है जिससे इस्लाम की छवि को धूमिल होती है। दूसरा कारण बहुत रोचक था। यह कहा गया कि नाटक की मुख्य पात्र माई अर्थात रतन की माँ के चरित्र को बाकी सब पात्रों से श्रेष्ठ दिखा कर यह सिद्ध किया गया है कि हिन्दू बुढ़िया आदर्श है। तीसरा कारण यह बताया गया था कि नाटक्कार भारतीय है।

कराची के पुलिस कमिश्नर की आपत्तियों और अनुमति न दिए जाने के बाद भी 'गोथे जर्मन सूचना केन्द्र' कराची में खेले गये इस नाटक की जो समीक्षाएँ पाकिस्तान के प्रमुख समाचार पत्रों में छपीं, उनमें नाटक और उसके प्रदर्शन को बहुत सराहा गया।

उमेश अग्निहोत्री ने इस नाटक का वाशिंग्टन में शो किया था जिसकी बहुत सराहना हुई थी। इस शो के दौरान यह मुद्दा भी सामने आया था कि नाटक द्विराष्ट्र सिद्धान्त का विरोधी है। इसलिए पाकिस्तान के कलाकारों को इसमें काम नहीं करना

चाहिए। पर पाकिस्तान मूल के दो अभिनेताओं नूर तग्मी और शोएब हसन ने इस आपत्ति को खारिज करते हुये नाटक में दो महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभायी थीं। वास्तव में यह नाटक राजनैतिक नहीं है। इसमें कही द्विराष्ट्र सिद्धान्त का उल्लेख नहीं हुआ है। यह नाटक राजनैतिक घटनाक्रम से प्रभावित आम आदमी के जीवन और उसकी समस्याओं को सामने लाता है। उमेश अग्निहोत्री ने नाटक के इस मूलमंत्र को ही पकड़ा था और इसका सफल निर्देशन किया था। इस शो की वीडियो रिकार्डिंग मैंने देखी है।

दिनेश ठाकुर 'जिस लाहौर...' के सौ से अधिक शो कर चुके हैं। समीक्षकों ने उनकी प्रस्तुति को सराहा है और उसे पर्याप्त महत्व दिया है। दिनेश ठाकुर साम्प्रदायिक सद्भाव तथा लोकतांत्रिक मूल्यों पर अटूट विश्वास के लिए भी जाने जाते हैं। उन्होंने 'जिस लाहौर...' को समकालीन साम्प्रदायिक स्थितियों से जोड़ने का प्रयास किया है। इसके लिए वे नाटक के प्रारंभ में गुजरात के साम्प्रदायिक दंगों के चित्रों को पर्दे पर प्रस्तुत करते हैं। नाटक को और अधिक समकालीन बनाने के लिए उन्होंने नाटक में नासिर काज़मी की गज़लों की जगह उर्दू के विख्यात कवि निदा फाज़ली से कुछ गीत-गज़ले लिखाई हैं जिनका प्रयोग नाटक में करते हैं। दरअसल के 'जिस लाहौर...' को समकालीन प्रसंगों जोड़ देने का प्रयास निर्देशक की वैचारिक प्रतिबद्धता और साम्प्रदायिकता विरोध के प्रति उसके आग्रह को दर्शाता है लेकिन नाटक में जो कला कौशल है, संशलिष्टा है, सार्वभौमिकता है, मानवीय संदेवना है, सम्बन्धों की जटिलता और उसके आयाम है उन्हें समकालीनता का अतिरिक्त आग्रह खण्डित कर देती है। नाटक को समकालीन स्थितियों से जोड़ना दरअसल उसे सीमित करना है। यदि आजकल के हालात में नाटक अपना प्रभाव छोड़ने में सक्षम न होता तो हबीब तनवीर तथा अन्य निर्देशकों की प्रस्तुतियों को क्यों सराहा जाता? 'जिस लाहौर...' वास्तव में अतीत और वर्तमान की कड़ियों को बहुत कलात्मक स्तर पर जोड़ता है। इस सम्बन्ध को दर्शक समझता भी है और सराहता भी है। लेकिन दर्शक की परिष्कृत समझ पर शंका करने वालों के मन में या अपने वैचारिक आग्रह के प्रति अधिक मुखर होने वाले या आजकल के हालात से जोड़ कर तात्कालिक प्रशंसा पाने वालों के लिए समकालीनता एक मजबूरी होती है।

सिडनी में 'जिस लाहौर...' का मंचन कुमुद मीरानी ने किया

था। इस प्रदर्शन का भी वीडियो मैंने देखा है और प्रभावित हुआ हूँ। सिडनी में इस नाटक को दर्शकों ने जितना पसन्द किया और जो प्रतिक्रियाएँ दी वे अद्भुत है। कुमुद मीरानी को दर्शकों ने जो ई-मेल भेजे हैं उनसे पता लगाता है कि नाटक का मंचन कितना प्रभावशाली रहा होगा। एक दर्शक अनिल ने लिखा है कि नाटक देखते हुए हमारी आँखों में कई बार आँसू आ गये। दूसरे दर्शकों ने भी नाटक के भावनात्मक पक्ष का उल्लेख किया है। इक्तिदार और फातमा ने अपने ई-मेल में अद्भुत प्रसंग की चर्चा की है। विभाजन की त्रासदी की मुक्तभोगी एक महिला जिसकी आँखों की 'टियर डक्ट सर्जरी' होनी थी नाटक देख कर इतना अधिक रोई कि अगले दिन जब डाक्टर के पास सर्जरी के लिए गयी तो डाक्टर ने बताया कि अब सर्जरी की जरूरत नहीं है।

'जिस लाहौर...' गंभीर विमर्शों का नाटक होते हुये भी विचारों को घटना क्रम, संवादों, पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। यह नारे बाज़ी, बड़बोलेपन, कटुआलेचना, मुखर विरोध का नाटक नहीं है। दरअसल यही इस नाटक की शक्ति भी है। जिन निर्देशकों ने इसे पचहाना है उन्हें सफलता मिली है।

नाटक भारत विभाजन की त्रासदी पर केन्द्रित है फिर भी विभाजन केवल नाटक की पृष्ठभूमि बनता है। नाटक सीधे-सीधे विभाजन पर कोई टिप्पणी नहीं करता। इधर-इधर बोले गये संवादों और विशेषरूप से नासिर काज़मी के माध्यम से नाटक भारत विभाजन पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। राजनैतिक स्तर पर भारत का विभाजन तो कर दिया था लेकिन क्या इस विभाजन को मानसिक और सांस्कृति स्तर पर लोगों ने स्वीकार किया था? राजनेताओं के ग़ैर जिम्मेदार और अवसरवादी निर्णय की सज़ा जनता को कई तरह से मिली थी। विभाजन के दौरान जान और माल की हानि होने के बाद मानसिक रूप से जनता विभाजन की यातना से लगातार पीड़ित और दुःखी रही है। सिकन्दर मिर्ज़ा को लखनऊ और लाहौर में केवल 'लाम अर्थात 'ल' की समानता दिखाई देती है। लखनऊ भी 'ल' से शुरु होता है और लाहौर भी 'ल' से शरु होता है। यह भी इंगित किया जाना चाहिए कि अरबी भाषा में 'ल' का अर्थ 'नहीं' होता है। दोनों शहरों में सिकन्दर मिर्ज़ा को कुछ भी समान नहीं दिखाई पड़ता। पचास पच्पन वर्ष का एक आदमी जो अपने शहर में कई पुश्तों से जमा हुआ था। वहाँ उसका कारोबार था; अचानक उखाड़ दिया जाता है। एक ऐसी जगह आ जाता है जहाँ की भाषा भी

वह नहीं बोल सकता। अब इस शहर में उसे और उसकी अगली पीढ़ियों को जीवन बिताना होगा। यह भयानक भय और अनिश्चय की स्थिति है जिसमें किसन्दर मिर्ज़ा और हमीदा बेगम नाटक के पहले दृश्यों में देखे जाते हैं। हमीदा बेगम माई से बार-बार कहती है, 'यह शहर तो हमारी समझ में आया ही नहीं।'

'अपरूट' होने या जड़ों से कट' जाने का दर्द, नासिर काज़मी के माध्यम से एक नये रंग में आया है। कवि या कलाकर्मी के ऊपर अपनी धरती और अपने लोग छोड़ने का बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है क्योंकि वह रचनात्मक ऊर्जा अपनी धरती और अपने लोगों से ही अर्जित करता है। नासिर काज़मी 'इधर' को 'उधर' तलाश करता है। बरसात की शामें, मोर की कूक, सरसों के फूल, श्याम चिड़ी की तलाश नासिर के लिए 'इस्लामी अदब' और 'तरक्की पसन्द अदब' से बड़ा मसला हैं। नासिर के व्यक्तित्व की बेचैनी और लाहौर में 'एडजस्ट' न कर पाने की मानसिकता 'अपरूट' होने के कारण ही है। लेकिन 'अपरूट' होने के बाद भी नासिर काज़मी कुछ मूल्यों को अपने सीने से लगाये हुए हैं। उसने हिन्दुस्तान में जो कुछ देखा, समझा और बरता है वह उसे जान से ज़्यादा प्यारा है। वह बाहुलतावादी सांस्कृति परिवेश की पैदावार है। ऐसे समाज में पला और बढ़ा है जहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई साथ-साथ रहते और सामाजिक जीवन में अपनी भूमिकाएँ निभाते आये हैं। नासिर काज़मी के लिए रतन की माँ का लाहौर में रहना किसी तरह की चिंता का कारण नहीं है बल्कि उसका वह अपने लिए बहुत महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि रतन की माँ उसे उसके अतीत से जोड़ती है।

नाटक में नासिर काज़मी एक जटिल पात्र हैं। उसके संवाद बहुत पारदर्शी और काव्यात्मक ही नहीं है बल्कि कहीं कहीं वह भावनाओं के जटिल और दुरुह क्षेत्रों में प्रवेश कर जाते है। प्राय : नासिर काज़मी की भूमिका करने वाले पात्र यह नहीं समझ पाते कि नासिर के संवाद कई स्तरों पर चलने वाले संवाद है। कुछ संवाद वह अपने आपसे ही बोलता है, पर लगता है दूसरों को संबोधित कर रहा है। कहीं उसके संवाद बिल्कुल अंतर्मुखी हो जाते हैं। कहीं उनमें व्यंग्य उभर कर सामने आता है और यथार्थ धरातल पर चलने वाले प्रसंग चमक जाते हैं।

विभाजन के सम्बन्ध में तन्नों अपनी माँ हमीदा बेगम से कहती है कि अगर हम लोग और माई (रतन माँ) एक ही मकान में

रह सकते हैं तो हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमान एक साथ क्यों नहीं रह सकते थे। हमीदा बेगम जवाब देती है, "रह सकते क्या, सदियों से रहते आये थे" इसके बाद तन्नो पूछती है "हिन्दुस्तान क्यों बंट गया"? जवाब में हमीदा बेगम कहती है, "अपने अब्बा से पूछना" हमीदा बेगम और तन्नों के ये संवाद दो दिशाएँ खोलते हैं। पहली तो विभाजन की मूल चेतना को ही सिरे से खारिश कर देती है और शायद इसका कारण ही यह माना गया है कि नाटक द्विराष्ट्र सिद्धांत का विरोधी हैं। इस संवाद से यह भी स्पष्ट होता है कि राजनीति पुरुष करता है जबकि उसका सबसे ज़्यादा प्रतिकूल प्रभाव स्त्रियों और बच्चों पर पड़ता है। नाटक में गुण्डा पहलवान याकूब खाँ जब कहता है कि क्या पाकिस्तान इसलिए बना था कि यहाँ काफ़िर रहे तो सिकन्दर मिर्ज़ा कहते हैं 'ये पाकिस्तान बनवाने वालों से पूछिये।' मतलब सिकन्दर मिर्ज़ा या एक आम मुसलमान की पाकिस्तान निर्माण में कोई भूमिका नहीं रही और पाकिस्तान बनवाने वाले तक नहीं जानते कि पाकिस्तान क्यों बना था? उसमें 'काफ़िर' रह सकते है या नहीं?

भावनात्मक स्तर पर आगे बढ़ते हुए नाटक धर्म जैसे मुद्दे को भी अपनी परिधि में ले आता है। योरोप की तुलना में पूर्वी देशों में धर्म का स्वरुप एक अलग ढंग से विकसित हुआ है। विशेष रुप से भारत के बहुलतावादी समाज ने धर्म के मर्म को अधिक गहराई से पहचाना है। पूरा मध्यकाल इसका प्रमाण है कि धार्मिक सहिष्णुता ही नहीं बल्कि सभी धर्मों के प्रति विश्वास, आदर, सम्मान का भाव भारतीय 'समझदारी' का एक अभिन्न अंग बन गया था। नाटक में धर्म के प्रति कई रवैये देखे जा सकते हैं। पहला मौलवी इकरामउद्दीन का है जो धर्म को केवल कुरान और हदीस के आधार पर व्याख्या करता है। इसके अंतर्गत इस्लाम धर्म का सहिष्णु, मानवीय और दूसरे धर्मों को आदर सम्मान देने वाला स्वरुप उभरता है। मौलवी हिन्दू बुढ़िया को पूरे अधिकार और सम्मान देने की बात करता है। उसके धर्म को बुरा नहीं कहता बल्कि उसका सम्मान करता है। रतन की माँ के मर जाने पर इस बात की वकालत करता है कि उसका क्रिया-कर्म हिन्दू रीति रिवाज से किया जाये क्योंकि मरते समय वे हिन्दू थीं।

मौलवी इकरामउद्दीन के धर्म से बिल्कुल अलग या उल्टा पहलवान याकूब खां का धर्म है। वह इस्लाम धर्म को अपने लाभ और रतन की माँ को लूट लेने का हथियार बनाना चाहता है। यहाँ इस्लाम के वास्तिक रुप और छझ रुप के बीच में

टकराव देखते हैं जो नाटक का एक मूल द्वंद्व बन जाता है और अंतत : नाटक का अंत भी इसी द्वंद्व का चरम उत्कर्ष है। पहलवान याकूब खां उन लोगों का प्रतीक है जो धर्म को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करते हैं। धर्म का तीसरा पक्ष सिकन्दर मिर्ज़ा और हमीदा बेगम के माध्यम से सामने आता है। यह धर्म का सहज मानवीय स्वरुप है। धार्मिक आस्थाओं पर पूरा विश्वास करने के साथ-साथ धर्म मानवीयता का पक्षधर बनता है। धर्म स्वार्थ सिद्धि का माध्यम नहीं है। नासिर काज़मी धर्म के एक और स्वरुप के प्रतिनिधि बनते हैं। वे मानते हैं कि किसी व्यक्ति के धर्म विशेष को मानने के पीछे कुछ ऐसे कारण होते हैं जिन पर उसका कोई वश नहीं है। वे अलीमा चाय वाले से कहते हैं, तुम मुसलमान इसलिए हो कि तुम्हारे माता-पिता मुसलमान थे। इसमें तुम्हारा कोई दखल नहीं है। तुम्हारी कोई भूमिका नहीं है और अगर धर्म के चुनने में तुम्हारी कोई भूमिका नहीं है तो उसके लिए लड़ना कहाँ तक जायज़ है? नासिर काज़मी का धर्म मानवीयता है।

साम्प्रदायिक सद्‌भाव और धार्मिक सहिष्णुता स्थापित करने के लिए पूरा उपमहाद्वीप शताब्दियों से सक्रिय रहा है। विभाजन के बाद हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक सद्‌भाव स्थापित करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। भारत में साम्प्रदायिकता विरोध को भारत सरकार ने न केवल अपनी नीतियों और सिद्यांतों में जगह दी बल्कि उसके लिए कार्यक्रम भी बनाये हैं। नागरिक समाज ने भी साम्प्रदायिकता विरोधी समितियों आदि का गठन किया है और लगातार साम्प्रदायिक सद्‌भाव बनाये रखने के प्रयास किए गये हैं। लेकिन हम देखते हैं कि साम्प्रदायिकता और धर्मान्धिता लगातार बढ़ी है। इसका क्या कारण है कि एक ओर सरकार, लगभग सभी राजनैतिक दल, नागरिक समाज साम्प्रदायिकता को समाप्त करना चाहते हैं पर दूसरी ओर साम्प्रदायिकता लगातार बढ़ रही है और दिन-पर-दिन भयावह होती जा रही है। 'जिस लाहौर.......' साम्प्रदायिक सद्‌भाव के सम्बन्ध में जिन मुद्दों की ओर इंगित करता है उन पर विचार करना आवश्यक है। पहली बात यह स्पष्ट हो जाती है कि साम्प्रदायिकता को चुनौती देने के लिए धर्म के मानवीय स्वरुप और सहिष्णुता को रेखांकित करना तथा व्यवहार में लाना आवश्यक है। दूसरी बात यह है सम्प्रदायों के बीच मेलजोल और सहयोग की भावना को विकसित करना जरूरी है। साम्प्रदायिक सद्‌भाव बनाने के लिए यह भी आवश्यक

है कि सामाजिक विकास होना चाहिए जिसमें दोनों सम्प्रदायों की भागीदार अवश्य हो।

नाटक के सम्बन्ध में यह जानना बहुत आवश्यक है कि यह यथार्थवादी धरातल पर लिख गया नाटक है। मेरे पिछले नाटकों 'इन्ना की अवाज़' और 'वीरगति' 'स्टाइलाइज़्ड' नाटक हैं। उसमें यथार्थ और कल्पना के माध्यम से 'फाल्स' 'क्रिएट' किया गया है जो एक 'स्टाइल' के रूप में सत्य को उद्‌घाटित करता है लेकिन 'जिस लाहौर.....' पूरी तरह यथार्थ के घरातल पर चलता है। यही कारण है कि जब हबीब तनवीर ने इस नाटक को उठाया था तो लोगों को बड़ा अचरज हुआ था क्योंकि उनकी प्रिय शैली लोक शैली है जो काफी 'स्टाइलाइज़्ड' होती है। लेकिन हबीब साहब ने नाटक के मर्म को समझा और इसे यथार्थवादी ढंग से किया।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि नाटक वर्तमान यानी आज की परिस्थितियों पर कोई सीधी टिप्पणी नहीं करता। प्राय : नाट्य निर्देशकों को यह मोह होता है दर्शकों को प्रभावित करने के लिए प्रदर्शन को आज की घटनाओं से जोड़ दिया जाये। 'जिस लाहौर.....' में इस तरह के प्रयास यदि किए जायेंगे तो नाटक की एकात्मा तथा तारतम्य टूट जायेगा। नाटक आज से पचास-साठ साल पुरानी पृष्ठभूमि पर आधारित होने के बावजूद वर्तमान से अपना सीधा रिश्ता बनाता है। इस पर वर्तमान का अतिरिक्त बोझ नहीं लादना चाहिए।

नाटक की मुख्य तथा केन्द्रीय पात्र माई रतन की माँ लगभग साठ साल की एक बूढ़ी औरत है जिसका बेटा रतन लाल लाहौर का नामी-गिरामी और अत्यंत धनवान जौहरी था। वह दंगों के दौरान अपने परिवार साहित मारा गया या नहीं; यह माई को नहीं पता। माई किसी तरह बच गयी। हवेली की लूट-पाट के दौरान भी वह हवेली में किसी तरह अपने को छिपा लेने में कामयाब हो गयी। माई ऐसी बूढ़ी औरत है जो अपने सहज और सीधे स्वभाव के अंतर्गत लोगों की मदद करने पर विश्वास करती है। उसके अन्दर किसी तरह के पूर्वाग्रह नहीं हैं। वह लाहौर की संस्कृति का प्रतीक है जो उदारता, सहिष्णुता, मानवता और भाई चारे पर आधारित है। दूसरों की सहायता करना माई का सहज गुण है। बल्कि कहना चाहिए वह अपने को दूसरों की मदद करने से रोक ही नहीं पाती। सिकन्दर मिर्ज़ा का परिवार जब उसकी हवेली में आ जाता है तब भी माई अपनी सहायता करने की सहज प्रवृति के

अंतर्गत उनकी मदद करती है।

कुछ निर्देशकों ने माई के चरित्र को इतना बूढ़ा कर दिया है कि वह पूरे नाटक में लगातार काँपती रहती है। माई इतनी बूढ़ी और निर्बल नहीं है। नाटक में उसे एक ऐसी बूढ़ी औरत के रुप में प्रस्तुत किया गया है जो सिकन्दर मिर्ज़ा के परिवार की ही नहीं बल्कि पूरे मोहल्ले में आये मोहाजिर परिवारों की मदद करती है और वक़्त पर उनके काम आती है। दूसरे की मदद करने की सहज प्रवृति के साथ-साथ माई को अपने धर्म और विश्वासों पर पूरी आस्था है। वह हिन्दू है और किसी भी स्थिति में अपना धर्म नहीं बदलना चाहती। वह लाहौर में अकेली हिन्दू बची है लेकिन उसने अपने रीति-रिवाज नहीं छोड़े हैं। रोज़ रावी में नहाने जाती है और अपने धर्म पर उसे पूरा विश्वास है। सिकन्दर मिर्ज़ा के परिवार के साथ उसकी निकटता बढ़ती है और वह परिवार का एक सदस्य बन जाती है।

सिकन्दर मिर्ज़ा और उनका परिवार लखनऊ से लाहौर पहुँचा है। यह परिवार लखनऊ की सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक है। माई का विरोध करते समय भी नाटक में उनके लखनवी संस्कारों की झलक मिलती है। हमीदा बेगम बहुत विनम्र, संवेदनशील और सुसंस्कृत महिला है। कुछ निर्देशकों ने उसे एक लड़ाकू महिला के रुप में प्रस्तुत किया है जो उसके चरित्र के सर्वथा प्रतिकूल है। हमीदा बेगम दूसरों के अधिकारों की प्रति पूरी तरह संवेदनशील है। यही कारण है कि सिकन्दर मिर्ज़ा का पूरा परिवार कभी यह नहीं मानता कि हवेली एलाट होने के बाद उनकी हो गयी है। वे हवेली का स्वामी माई को ही मानते हैं। हमीदा बेगम की सहजता और संवेदनशीलता माई को प्रभावित करती है। यह गुण माई में भी है।

कुछ निर्देशकों ने जावेद (सिकन्दर मिर्ज़ा) के बेटे के चरित्र को बदल कर उसे साम्प्रदायिक युवक बना दिया है। यह अवधारणा मूल नाटक के साथ मेल नहीं खाती। ऐसा शायद इसलिए किया गया है कि नाटक में एक और नाटकीय द्वंद्वात्मक पक्ष का निर्माण किया जाये और उसे समकालीन संदर्भों से जोड़ दिया जाये। लेकिन जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ नाटक की पृष्ठभूमि 50-60 साल पुरानी है और उसको खींचने-तानने से नाटक की मूल आत्मा नष्ट हो जाती है। जावेद को साम्प्रदायिक दिखा कर और माई के प्रति उसके अन्दर रोष दिखाने से नाटक का केन्द्रीय द्वंद्व बहुत कमज़ोर पड़ जाता है।

पहलवान याकूब खाँ के चरित्र के बारे में स्पष्ट होना आवश्यक है। वह इस्लाम और पाकिस्तान का पक्षधर दिखाई पड़ता है पर वह ईमानदार नहीं है। कुछ निर्देशकों ने याकूब खां को सच्चे अर्थों में इस्लाम और पाकिस्तान का समर्थक बना दिया है। इस कारण पहलवान के चरित्र में एक ईमानदारी पैदा हो गयी है जो पूरे नाटक को खण्डित कर देती है और पहलवान का चरित्र भी बदल जाता है। दो बातों में बहुत फर्क है। पहली यह कि पहलवान बुनियादी रूप में धूर्त, मक्कार, चालाक, अपराधी प्रवृत्ति का है और वह अपने स्वार्थों के लिए धर्म का सहारा ले रहा है, धर्म का रक्षक बन बैठा है और उसके अनुसार जो धर्म के शत्रु हैं उनका नाश करना चाहता है। दूसरी स्थिति यह बनती है कि पहलवान बड़ी ईमानदारी, सच्चाई निष्ठा से एक गलत बात को सही मान कर उस पर विश्वास कर रहा है। नाटक के पहलवान का चरित्र कहीं से भी ईमानदार नहीं है। मतलब वह ईमानदारी से धर्मांध और हिंसक नहीं है।

कुछ अभिनेता नासिर काज़मी की भूमिका निभाते हुए परेशानी का अनुभव करते हैं क्योंकि वह वर्तमान, भविष्य और अतीत में एक साथ जीता है। अलीमा चाय वाले से उनकी बातचीत यथार्थ के एक स्तर से शुरु होकर कभी कल्पना लोक में पहुँच जाती है तो कभी उसमें काव्यात्मक तर्क उभर आते हैं। पहलवान याकूब खाँ के साथ उनका एक दिलचस्प रिश्ता बनता है जिसे नासिर कुछ अर्थों में 'इंज्वाय' करते हैं। फक्कड़पन, मस्ती, उमंग, उल्लास, गहरा दुःख, यादों के ज़ख्म, विस्थापन की निरर्थकता का भाव, आदमी और आदमी के बीच फर्क पैदा करने वाले विचारों का विरोध, तर्क और बुद्धि से परिवेश को समझने की ललक, नयी परिभाषाओं द्वारा संसार को समझने-समझाने की लालसा नासिर के चरित्र के रंग है।

नाटक की मंच सज्जा सांकेतिक हो सकती है और उसके लिए बड़े सेट या सीढ़ियाँ आदि बनाने की आवश्यकता नहीं है। कुल मिला कर नाटक में तीन सेट है। पहला हवेली, दूसरा मस्जिद और तीसरा चाय की दुकान। हेवली के सेट में उन सीढ़ियों की आवश्यकता पड़ती है जिनसे उतर कर माई नीचे आती है। इसके लिए यदि उचित लगे तो ध्वनि प्रभाव द्वारा काम चलाया जा सकता है। हवेली का सेट साधारण पर्दे पर कुछ 'इंप्रेशन' देकर स्थापित किया जा सकता है। अलीमा चाय वाले दुकान की पृष्ठभूमि खाली छोड़ी जा सकती है। केवल चाय

बनाने का कुछ सामान एक दो मोढ़े डाल कर सेट का 'इम्प्रेशन' दिया जा सकता है।

'जिस लाहौर...' पिछले बीस साल से लगातार मंचित हो रहा है। और आशा है कि नाटक आगे भी अपनी प्रसांगिकता बनाये रखेगा।

—असग़र वजाहत

दिल्ली

जनवरी 2009

प्रमुख पात्रों का संक्षिप्त परिचय और वेशभूषा

1. सिकन्दर मिर्ज़ा—विभाजन के बाद लखनऊ से लाहौर आये हैं। लखनऊ में इनका चिकन का कारखाना था। उम्र 50-55 साल के करीब हैं। लखनऊ की सभ्यता में रचे-बसे आदमी हैं। सीधा-साधा सरल स्वभाव है। जल्दी परेशान हो जाते हैं। दुनियादारी बहुत कम आती है। अपनी पत्नी हमीदा बेगम पर निर्भर रहते हैं। हक़ और इन्साफ की बात को सही समझते हैं। लेकिन विभाजन की त्रासदी और कैम्प में काटे दिनों ने उन्हें पूरी तरह हिला दिया है। मिली-जुली सभ्यता और संस्कृति पर उन्हें पूरा विश्वास है।

आमतौर पर शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहनते हैं। टोपी लगाते हैं।

2. हमीदा बेगम—लखनऊ की घरेलू औरत हैं। स्वभाव में ईमानदारी और शराफत है। एहसान फरामोश नहीं हैं। अपने बच्चों और परिवार से बहुत प्यार करती हैं। हिन्दू मुसलमान का कोई भेद-भाव नहीं है। मजहब को निजी मामला मानती हैं।

लखनऊ का खड़ा पाजामा (गगरा) और कुर्ता पहनती हैं।

3. रतन की माँ—लाहौर की बूढ़ी औरत हैं। स्वभाव में मदद करने का भाव स्थायी रुप ले चुका है। हिन्दू धर्म पर पूरा विश्वास है लेकिन धर्मान्धिता और जड़ता नहीं है। मुस्लिम समाज में घुलना-मिलना पुरानी आदत है। दूसरे लोगों का ध्यान रखना और सेवा भाव विशेष गुण हैं। लाहौर की बूढ़ी औरतों की तरह शलवार-कुर्ता पहनती है, चादर ओढ़ती हैं। चूँकि विधवा है इसलिए सफेद कपड़े ही पहनती हैं।

4. पाक़ूब खाँ (पहलवान)—शहर का बहुत बड़ा गुण्डा है। मुस्लिम लीग का सदस्य है। बहुत लालची और अपराधी प्रवृत्ति का आदमी है। दंगों के दौरान उसने बड़ी लूट-मार की थी। अनपढ़ है। आक्रामक स्वभाव का है। अवसरवादी है। क्रोधी स्वभाव है पर समय पर चापलूसी भी कर लेता है। पाकिस्तान

बनने के बाद अपने को पक्का और सच्चा मुसलमान बताने लगा है। उसके व्यक्तित्व में ईमानदारी नहीं है। वह इस्लाम और धार्मिकता की जो बात करता है उसमें पूरा छद्म और बनावट होती है। लुंगी और कुर्ता पहनता है। कभी-कभी जिन्ना कैप लगा लेता है।

5. नासिर काज़मी—यह पात्र उर्दू के प्रसिद्ध कवि नासिर काजमी (1925-1972) का ही काल्पनिक रूप है। नाम बदलने का प्रयास नहीं किया गया है। नाटक में नासिर काजमी के कुछ संवाद उनके ही संवाद है जो उन्होंने कई जगह व्यक्त किए थे। वे... अम्बाला से लाहौर पहुँचे हैं। पूरा कवि व्यक्तित्व है। पूरी तरह मानवता पर विश्वास करते हैं। काल्पनिक और वास्तविक जगत के बीच आवा-जाही बनी रहती है। बहुत पढ़े-लिखे हैं लेकिन अहंकार नहीं है। अत्यन्त संवेदनशील हैं। तर्क संगत बात करते हैं। लाहोबाली, लापरवाह किस्म के आदमी हैं। दुनियादारी से कुछ लेना-देना नहीं है। कमीज-पैंट या कुर्ता पाजामा पहनते हैं।

6. मौलवी इकरामउद्दीन—मोहल्ले की मस्जिद के मौलवी हैं। पक्के और सच्चे मुसलमान हैं। जो बात कहते हैं उसका आधार कुरान और हदीस होते हैं। इस्लाम के बुनियादी सिद्धान्तों पर पूरा विश्वास है। राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। गरीब परिवार से सम्बन्ध है। स्वभाव से विनम्र और मृदुभाषी है। अपने विश्वासों और आस्था पर पूरी तरह डटे रहते हैं। सच और झूठ में तुरन्त अन्तर कर लेते हैं और ईमानदारी से अपनी बात कहते हैं।

कुर्ता पाजामा, टोपी पहनते हैं। बहुत सादगी से रहते हैं।

पात्र

सिकन्दर मिर्ज़ा	उम्र 55 साल
हमीदा बेगम	पत्नी, उम्र 45 साल
तनवीर बेगम (तन्नो)	छोटी लड़की उम्र 11-12 साल
जावेद	सिकन्दर मिर्ज़ा का जवान लड़का उम्र 24-25 साल
रतन की माँ (माई)	उम्र 65-70 साल (पंजाबी)
पहलवान याकूब	
खान	मोहल्ले का गुण्डा और मुस्लिम लीगी नेता (पंजाबी)
अनवार	पहलवान का दोस्त (पंजाबी) उम्र 20-22 साल
सिराज	पहलवान का दोस्त-मोहाज़िए उम्र 20-22 साल
रज़ा हमीद	पहलवान का दोस्त, उम्र 20-22 साल
हुसैन	सिकन्दर मिर्ज़ा का पड़ोसी पुराना ज़मींदार, मोहाजिर, उम्र 50 साल
नासिर काज़मी (शायर)	सिकन्दर मिर्ज़ा का पड़ोसी, उम्र 35-36 साल मोहाजिर
मौलवी इकरा-मनुद्दीन	मस्जिद का मौलवी, उम्र 65-70 साल (पंजाबी)
अली-	

मनुद्दीन	चायवाला-उम्र 40 साल (पंजाबी)	मुस्लिम	
मुहम्मद		लीगी	नेता
शाह	पहलवान का दोस्त		
फ़याज़	मुस्लिम लीगी कार्यकर्ता		

दृश्य : एक

(मंच पर अंधेरा-सा है। पृष्ठभूमि से किसी प्रदर्शन और जुलूस की स्पष्ट आवाज़ें आ रही है जो धीरे-धीरे साफ़ होती जा रही है। प्रदर्शनकारी पास आने लगते हैं। मंच पर प्रदर्शनकारियों के आने से पहले जो स्पष्ट नारे सुनाई देते हैं, वे ये हैं—)

"नार-ए-तकबीर...

अल्लाहो-बकबर"...

"लेके रहेंगे...

"पाकिस्तान, पाकिस्तान"

(जुलूस मंच पर आता है। नारा लगता है...)

"पाकिस्तान पाकिस्तान...

"लेके रहेंगे पाकिस्तान...

"मुस्लिम लीग मुस्लिम लीग...

ज़िन्दाबाद मुस्लिम लीग"

(पूरा जुलूस मंच पर आ जाता है और एक गुट ज़ोर से कहता है।)

"सीधा पैर जुत्ती दा"

(दूसरा गुट जवाब देता है)

-"ख़िज़िर, पुत्तर कुत्ती दा।"

"ख़िज़िर पुत्तर कुत्ता दा" **(पंक्ति को भीड़ दोहराती है तथा कुछ लोग इस पर नृत्य जैसा करने लगते हैं**

और बार-बार)

"कुत्ती दा" "कुत्ती दा" (कहते हैं...)

(नारा लगता है) "ख़िज़िर"

(दूसरा गुट कहता है) "पुत्तर दा"

(अचानक मंच पर एक मुस्लिम लीगी भागता हुआ आता है और जुलूस के नेता से कहता है)

मुस्लिम लीगी : ओय फ़याज़...ओय...रुक जा...रुक जा...

(नारे लगाने वाले रुक जाते हैं। ख़ामोशी हो जाती है। मुस्लिम लीगी फ़याज़ को मंच के एक कोने में ले जाता है)

मुस्लिम लीगी : **(फ़याज़ से)** ओय फ़याज़...तू ए नारे न लगावा.

फ़याज़ : की गल हो गई?

मुस्लिम लीगी : तैनू नई पता फ़याज़...ख़िज़िर ने मुस्लिम लीग ज्वाइन कर ली।

फ़याज़ : ओय नई

मुस्लिम लीगी : ओय नई की? एक मुबारक ख़बर हुणें आई सी।

फ़याज़ : ए तो कमाल हो गया।

मुस्लिम लीगी : और की...अब पाकिस्तान बना समझो।

फ़याज़ : फ़याज़ मुसलमान दा खून है तो जोश मारेगा। जा जुलूस आगे बढ़ा।

(फ़याज़ जुलूस के पास जाता है। दो चार लोगों से सिर जोड़ कर बातचीत करता है और फिर एक ग्रुप ज़ोर से चीख़ता है।)

एक ग्रुप : ताज़ी ख़बर आई है।

दूसरा ग्रुप : ***(कहता है)*** ख़िज़िर सड्डा भाई है।

(यही नारा कई बार लगता है। जुलूस में नया जोश आ जाता है।)

(दूसरा नारा लगता है और जुलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।)

कुछ लोग : पाकिस्तान, पाकिस्तान।

दूसरा गुट : लेके रहेंगे पाकिस्तान।

(मंच पर प्रकाश व्यवस्था में परिवर्तन आता है और कुछ समय बीतने का आभास होता है। जुलूस एक ओर बाहर निकल कर मंच पर दूसरी ओर फिर अन्दर आता है।)

('पाकिस्तान, पाकिस्तान' के नारे लगाते रहते हैं।)

(अचानक मुस्लिम लीगी फिर से भागता हुआ आता है और फ़याज़ की बांह पकड़कर उसे जुलूस से अलग घसीटता है।)

मु. लीगी : फ़याज़ ओ ख़बर ग़लत सी।

फ़याज़ : की ख़बर?

मु. लीगी : ख़िज़िर ने मुस्लिम लीग नई ज्वाइन की ती।

फ़याज़ : ओय इ की चक्कर है?

मु. लीगी : सच्ची गल्ल है फ़याज़...सच्ची...जा जुलूस आगे बढ़वा.. ***(फ़याज़ जुलूस में आ जाता है और आठ-दस लोगों से खुसुर-पुसर करता है। सब ख़ामोश हो जाते हैं। अचानक एक गुट ज़ोर से चीख़ता है।)***

एक गुट : सीध पैर जुत्ती दा।

दूसरा : ख़िज़िर पुत्तर कुत्ती दा।

(पागलों की तरह पूरा जुलूस "ख़िज़िर पुत्तर दा" पर नाचने लगता है। यह कुछ क्षण जारी रहता है। फिर प्रकाश और आवाज़ें

धीरे-धीरे कम होती हैं। मंच पर अंधेरा हो जाता है। अंधेरे में कुछ क्षण के बाद हलका प्रकाश आता है और लुटे-पिटे शरणार्थयों का काफ़ला दिखाई पड़ता है। वे धीरे-धीरे मंच पर आगे बढ़ रहे हैं। पृष्ठभूमि से गायन की आवाज़ आती है।)

और नतीजे में हिन्दोस्तां बँट गया

ये ज़मीं बँट गयी आसमाँ बँट गया

तर्ज़े बँट गयी बयाँ बंट गया

शाख़ें गुल बँट गयी, आश्याँ बँट गया

हमने देखा था जो ख़्वाब ही और था

अब जो देखा तो पंजाब ही और था

(शरणार्थियों का ग्रुप मंच से निकल जाता है।)

---

*ख़िज्र हयात ख़ाँ : पाकिस्तान बनने से पहले पंजाब के मुख्यमन्त्री थे। ये यूनियनिस्ट पार्टी के नेता थे। मुस्लिम लीग से इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। इनकी पार्टी विभाजन का विरोध करती थी। मुस्लिम लीग के जुलूसों में ख़िज्र हयात ख़ाँ के विरोध में नारे लगाये जाते थे।

दृश्य : दो

(सिकन्दर मिर्ज़ा, जावेद, हमीदा बेगम और तन्नो सामान उठाऐ मंच पर आते हैं। इधर-उधर देखते हैं। वे कस्टोडियन द्वारा एलाट हवेली में आ गए हैं। सबके चेहरे पर संतोष और प्रसन्नता के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। सिकन्दर मिर्ज़ा, जावेद हाथों में उठाए सामान को रख देते हैं)

हमीदा बेगम : **(हवेली को देखकर)** या खुदा शुक्र है तेरा। लाख-लाख शुक्र है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : कस्टोडियन आफ़ीसर ने ग़लत नहीं कहा था। पूरी हवेली है, हलेवी।

तन्नो : अब्बाजान कितने कमरे हैं इसमें?

सिकन्दर मिर्ज़ा : बाईस।

हमीदा बेगम : सहेन की हालत देखो...ऐसी वीरानी छाई है कि दिल डरता है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जहाँ महीनों से कोई रह न रहा हो, वहाँ वीरानी न होगी तो क्या होगा।

हमीदा बेगम : मैं तो सबसे पहले शुक्राने की दो रकत नमाज़ पढूंगी...मैंने मन्नत मानी थी... नासपीटे कैम्प से तो छुट्टी मिली...

(हमीदा बेगम मंच के कोने में दरी बिछाती है और नमाज़ पढ़ने खड़ी हो जाती है।)

जावेद : अब्बाजान ये घर किसका है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : अब तो हमारा ही है बेटा जावेद।

जावेद : मतलब पहले किसका था?

सिकन्दर मिर्ज़ा : बेटा इन बातों से हमें क्या मतलब...हम अपनी जो जायदाद लखनऊ

में छोड़ आये हैं उसके एवज़ में समझो ये हवेली मिली है।

तनवीर : हमारे घर से तो बहुत बड़ी है हवेली।

सिकन्दर मिर्ज़ा : नहीं बेटे...हमारे घर की तो बात ही कुछ और थी। सहन में रात की रानी की बेल यहाँ कहाँ है? बरामदे कुशादा नहीं हैं। अगर बारिश में यहाँ पलंग बिछा दिये जाएँ तो पायतियाने तो भीग ही जाएँ।

तन्नो : लेकिन बना शानदार है।

जावेद : किसी हिन्दू रईस का लगता है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : कोई कह रहा था कि किसी मशहूर जौहरी की हवेली है।

जावेद : कमरे खोलकर देखें अब्बा। हो सकता है कुछ सामान वग़ैरा मिल जाए।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ठीक है बेटा तुम देखो...मैं तो अब बैठता हूँ...ये हवेली एलाट होने के बाद ऐसा लगता है जैसे सिर से हजारों मन बोझ उतर गया हो।

जावेद : पूरी हवेली देख लूं अब्बाजान!

तन्नो : भइया मैं भी चलूँ तुम्हारे साथ।

सिकन्दर मिर्ज़ा : नहीं तुम ज़रा बावरचीख़ाना देखो... भई अब होटल से गोश्त रोटी कहाँ तक आएगा...अगर सब कुछ हो तो माशाअल्लाह से हल्के-हल्के पराठे और अण्डे का ख़ागीना तो तैयार हो ही सकता है...और बेटे जावेद ज़रा बिजली जला कर देखो...पानी का नल भी खोलकर देखो...भई जो-जो कमियाँ होंगी उन्हें दर्ज करके कस्टोडियन वालों को बताना पड़ेगा...

(हमीदा बेगम नमाज़ पढ़कर आ जाती हैं।)

हमीदा बेगम : मेरा तो दिल...डरता है...

सिकन्दर मिर्ज़ा : डरता है?

हमीदा बेगम : पता नहीं किसकी चीज़ है...किन अरमानों से बनवायी होगी हवेली।

सिकन्दर मिर्ज़ा : फ़ुज़ूल बातें न कीजिए बेगम...हमारे पुश्तैनी घर में भी आज कोई शरणार्थी दनदनाता फिर रहा होगा...ये ज़माना ही कुछ ऐसा है...ज़्यादा शर्म हया और फ़िक्र हमें कहीं का न छोड़ेगी...अपना और आपका ख़्याल न भी करें तो जावेद मियाँ और तनवीर बेगम के लिए तो यहाँ पैर जमाने ही पड़ेंगे...शहरे लखनऊ छूटा तो शहरे लाहौर- दोनों में "लाम" तो मुश्तरिक है...दिल से सारे वहम निकाल फेंकिए और इस घर को अपना घर

समझ कर जम जाइए...बिस्मिल्लाह...
आज रात में इशां की नमाज़ के बाद
तिलावते कुराने पाक करूँगा...

(तन्नो के चीखने की आवाज आती है और वह दौड़ती हुई मंच पर आती है। वह डरी हुई है। सांस फूल रही है।)

हमीदा बेगम : क्या हुआ बेटी क्या हुआ।

तन्नो : इस हवेली में कोई है अम्माँ!

सिकन्दर मिर्ज़ा : कोई है? क्या मतलब।

तन्नो : मैं सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गई तो मैंने देखा...

सिकन्दर मिर्ज़ा : क्या फ़ूज़ूल बाते करती हो।

तन्नो : नहीं अब्बा सच।

हमीदा बेगम : डर गयी है...मैं जाकर देखती हूँ...

(हमीदा बेगम मंच के दाहिनी तरफ़ जाती हैं। वहां से उसकी आवाज़ आती है।)

हमीदा बेगम : यहाँ तो कोई नहीं है...तुम ऊपर किधर गयी थीं।

तन्नो : उधर जो सीढ़ियाँ हैं उनसे...

(हमीदा बेगम सीढ़ियों की तरफ़ जाती हैं।)

(तन्नो और मिर्ज़ा मंच के दाहिनी तरफ़ जाते हैं। वहां लोहे की सलाखों का फाटक बंद है। तभी हमीदा बेगम के चीखने की आवाज़ आती है।)

हमीदा बेगम : अरे ये तो कोई...देखो कोई सीढ़ियाँ उत्तर

रहा है।

(सिकन्दर मिर्ज़ा तेज़ी से दाहिनी तरफ़ जाते हैं। तब तक सफ़ेद कपड़े पहने एक बुढ़िया उतर कर दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो जाती है।)

सिकन्दर मिर्ज़ा : आप कौन हैं?

रतन की माँ : वाह जी वाह ये खूब रही, में कौण हूँ... तुसी दस्सो कौण हो जो बिना पुच्छे मेरे घर घुस आए...

सिकन्दर मिर्ज़ा : घुस आए...घुस आना कैसा। मोहतरमा ये घर हमें कस्टोडियन वालों ने एलाट किया है।

रतन की माँ : एलाट-पलाट मैं नई जाणदी...ये मेरा घर है...

सिकन्दर मिर्ज़ा : ये कैसे हो सकता है।

रतन की माँ : ओ किसे पूछ ले...ये रतनलाल जौहरी दी हवेली है...मैं उस दी माँ वाँ।

मिर्ज़ा : रतनलाल जौहरी कहाँ है?

रतन की माँ : फ़साद शुरू होण तो पहले किसी हिन्दू ड्राइवर दी तलाश विच घरों निकल्या सी...साडी गड्डी दा ड्राइवर मुसलमान सी ना, ओ लाहौर तो बाहर जाण नूं तैयार ही नई सी होन्दा...(रुआंसी आवाज़ में) तद दा गया रतन अज तक... (रोने लगती है)

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : ***(घबरा जाता है)*** देखिए जो कुछ हुआ हमें सख़्त अफ़सोस है...लेकिन आपको तो मालूम ही होगा कि अब पाकिस्तान बन चुका है...लाहौर पाकिस्तान में आया है...आप लोगों के लिए अब यहाँ कोई जगह नहीं है...आपको हम कैम्प पहुँचा आते हैं...कैम्प वाले आपको हिन्दुस्तान ले जाएँगे...

रतन की
माँ : मैं किदरी नई जाणां।

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : ये आप क्या कह रही हैं...मतलब ये के...ये मकान।

रतन की
माँ : ऐ मकान मेरा है।

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : देखिए...हमारे पास काग़ज़ात हैं।

रतन की
माँ : साड्डे कोल वी काग़ज़ात ने।

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : भई आप बात तो समझिए कि अब यहाँ पाकिस्तान में कोई हिन्दू नहीं रह सकता...

रतन की
माँ : मैं तो इत्थे ही रवांगी...जद त रतन नहीं आ जांदा...

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : रतन...

रतन की
माँ : हाँ, मेरा बेटा पुत्तर रतनलाल जौहरी...

सिक-
न्दर

मिर्ज़ा : देखिए हम आपके जज़्बात की क़द्र करते हैं लेकिन हक़ीक़त ये है कि अब आपका लड़का रतनलाल कभी लौटकर वापस...

रतन की माँ : क्यों तू क्या खुदा है...जो तैनू सारी गल्लां पक्कियाँ पता होण?

हमीदा बेगम : बहन...सैकड़ों हज़ारों लोग मार डले गए...तबाह-बर्बाद हो गए...

रतन की माँ : सैकड़ां हज़ारां बच भी तो गए।

सिकन्दर मिर्ज़ा : देखिए मोहरतमा...सौ की सीधी बात ये कि आपको मकान ख़ाली करने पड़ेगा... ये हमें मिल चुका है...सरकारी तौर पर।

रतन की माँ : मैं इत्थों नहीं निकलनांगी।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(गुस्से में)*** माफ़ कीजिएगा मोहरतमा... आप मेरी बुज़ुर्ग हैं लेकिन अगर आप ज़िद पर क़ायम रहीं तो शायद...

रतन की माँ : हाँ हाँ...मैनूं मार के रावी विच रोड़ आओ...तद हवेली ते क़ब्ज़ा कर लेणां... मेरे जिन्दा रयन्दे ऐजा हो नहीं सकदा।

सिकन्दर मिर्ज़ा : या खुदा ये क्या मुसीबत आ गयी।

हमीदा बेगम : आजकल शराफ़त का ज़माना नहीं है... आप कस्टोडियन वालों को बुला लाइए तो...अभी...

रतन की माँ : बेटा, तुम जाके जिसनूं मरजी बुला ले

आ...जान तो ज्यादा ते कुछ ले नईं सकेगा...जान मैं त्वानूं देण नूं तैयार हाँ।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : या खुदा मैं क्या करूँ।

हमीदा बेगम : अजी अभी जाइए कस्टोडियन के आफ़िस.. हमें ऐसा मकान एलाट ही क्यों कर दिया जो खाली नहीं है।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : **(जावेद से)** लाओ बेटा मेरी शेरवानी लाओ...तन्नो एक गिलास पानी पिला दो...

रतन की माँ : टूटी च पाणी आ रया है...एक हृते ही तो सप्लाई ठीक कोई है...बेटी, पानी टूटी चो लै लै।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : **(शेरवानी पहनते हुए)** देखिए हम आपको समझाए देते हैं...पुलिस ने आप पर ज़्यादती की तो हमें भी तकलीफ़ होगी।

रतन की माँ : बेटा, मेरे उत्ते जो कहेर पै चुकेया है... उस तो बड्डा कहेर होण कोइ पै नहीं सकदा...जवानमुंडा नई रिया...लक्खां दे जवाहरात लुट गए...सगे-सम्बन्धी मारे गए...

हमीदा बेगम : तो बुआ अब तो होश संभालो... हिन्दस्तान चला जाओ...अपने लोगों में रहना।

रतन की माँ : ईश्वर दी दात मेरा पुत्तर ही नई रिया, तो होण मैं कित्थे जाणां है?

(सिकन्दर मिर्ज़ा पानी पीते हैं और खड़े हो जाते हैं।)

सिक-न्दर मिर्ज़ा : ठीक है बेगम तो मैं चलता हूँ।

जावेद : मैं भी चलूँ आपके साथ।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : नहीं, तुम यहीं घर पर रहो...हो सकता है इस बुढ़िया ने कुछ और लोगों को भी घर में छिपा रखा हो।

रतन की माँ : रब दी सौं...मनूं छोड़ के इत्थे कोई नहीं है।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : नहीं बेटे...तुम यहीं रुको...

(मिर्ज़ा चले जाते हैं।)

हमीदा बेगम : खुदा हाफ़िज़।

(हमीदा बेगम, जावेद और तन्नो मंच के दाहिनी तरफ़ से हट जाते हैं।)

सिक-न्दर मिर्ज़ा : खुदा हाफ़िज़।

हमीदा बेगम : तन्नो...तुमने बावरचीख़ाना देखा?

तन्नो : जी अम्मी जान।

हमीदा बेगम : बर्तन तो अपने पास हैं ही...तुम जल्दी-जल्दी खाना पका लो...तुम्हारे अब्बा के लौटने तक तैयार हो जाए तो अच्छा है।

तन्नो : अम्मी जान बावरचीख़ाने में...लकड़ियाँ और कोयले नहीं हैं खाना काहे पर पकेगा?

हमीदा

बेगम : लकड़ियाँ और कोयले नहीं हैं?

तन्नो : एक लकड़ी नहीं हैं।

हमीदा : तो फिर खाना क्या खाक पक्केगा?

रतन की माँ : बेटी, बरांदे दे खब्बे हाथ दी तरफ वाली छोटी कोठड़ी च लकड़ां परी पइयाँ ने... कड ले...

(दोनों माँ (हमीदा) बेटी (तन्नो) एक दूसरे को हैरत और ख़ुशी से देखते हैं।)

दिल में लहर सी उठी है अभी

कोई ताज़ा हवा चली है अभी

शोर बरपा है खान-ए-दिन में

कोई दीवार-सी गिरी है अभी

भरी दुनिया में जी नहीं लगता

जाने किस चीज़ की कमी है अभी

वक़्त अच्छा भी आयेगा 'नासिर'

ग़म न कर ज़िन्दगी पड़ी है अभी

अतंराल गायान

दृश्य : तीन

(कस्टोडियन आफ़ीसर का कार्यालय। दो-चार मेज़ों पर क्लर्क बैठे हैं। सामने दरवाज़े पर "कस्टोडियन आफ़ीसर" का बोर्ड लगा है। दरवाज़े पर चौकीदारनुमा चपरासी बैठा है। आफिस में बड़ी भीड़ है। सिकन्दर मिर्ज़ा किसी क्लर्क से बातें कर रहे हैं। अचानक क्लर्क ज़ोरदार ठहाका लगाता है। दूसरे क्लर्क चौंकर उसकी तरफ़ देखने लगते हैं।)

क्लर्क-1 : हा-हा-हा...ये भी खूब रही... ***(दूसरे क्लर्कों से)*** अरे यारों काम तो होता ही रहेगा होता ही आया है, ज़रा तफ़रीह भी कर लो...ये भाई जान एक बड़ी मुसीबत में पड़ गए हैं। इनकी मदद करो।

क्लर्क-2 : बाइस कमरों की हवेली एलाट कराने के बाद भी मुश्किल में फँस गए हैं।

क्लर्क-3 : अरे ये तो बाईस कमरों की हवेली का कबाड़ ही नीलाम कर दें तो परेशानियाँ भाग खड़ी हों।

(क्लर्क हंसते हैं।)

क्लर्क-1 : मियाँ, इनकी जान के लाले पड़े हैं और आप लोग हँसते हैं।

क्लर्क-2 : अमाँ साफ़-साफ़ बताओ...पहेलियाँ क्यों बुझा रहे हो।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जनाब बात ये है कि जो हवेली मुझे एलाट हुई है उसमें एक बुढ़िया रह रही

है।

क्लर्क-2 : क्या मतलब?

सिक-न्दर मिर्ज़ा : मैं उसमें...मतलब हवेली खाली ही नहीं है...वो मुझे एलाट कैसे हो सकती हैं।

क्लर्क-3 : हम समझे नहीं आपको परेशानी क्या है।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : अरे साहब, हवेली में बुढ़िया रौनक अफ़रोज़ है...कहती है उनके रहते वहाँ कोई और रह नहीं सकता...मुझे पुलिस दीजिए...ताकि मैं उस कमबख़्त से हवेली ख़ाली करा सकूं।

क्लर्क-1 : मिर्ज़ा साहब एक बुढ़िया को हवेली से निकालने के लिए आपको पुलिस की दरकार है।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : फिर मैं क्या करूँ?

क्लर्क-2 : करें क्या..."हटवा" दीजिए उसे।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : जी मतलब...

क्लर्क-2 : अब "हटवा" देने का तो मैं आपको मतलब नहीं बता सकता?

क्लर्क-3 : जनाब मिर्ज़ा साहब आप चाहते क्या हैं।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : बुढ़िया हवेली से चली जाए...उसे कैम्प में दाख़िल करा दिया जाए और वो हिन्दोस्तान...

क्लर्क-3 : हिन्दोस्तान नहीं भारत कहिए...भारत...

सिक-न्दर मिर्ज़ा : जी भारत भेज दिया जाए।

क्लर्क-3 : तो आप इसकी दरख़ास्त कस्टम ऑफ़ीसर से करेंगे...

सिकन्दर

मिर्ज़ा : जी जनाब...मैं दरख़ास्त लाया हूँ।

(जेब से दरख़ास्त निकालता है।)

क्लर्क-1 : मिर्ज़ा साहब आप जानते हैं हमारे कस्टोडियन आफ़ीसर जनाब अली मुहम्मद साहब क्या तहरीर फ़रमाऐंगे?

सिकन्दर

मिर्ज़ा : क्या?

क्लर्क-2 : वो लिखेंगे...आपके नाम दूसरा मकान एलाट कर दिया।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : ज...ज...जी...जी...दूसरा।

क्लर्क-1 : और बाइस कमरों की हवेली अपने किसी सिंधी अज़ीज़ की जेब में डाल देगा...मोहाजिरों की कमी है पाकिस्तान में?

सिकन्दर

मिर्ज़ा : कुछ समझ में नहीं आता...

क्लर्क-2 : जनाब आप क़िस्मत वाले हैं जो धुप्पल में आपको इतनी बड़ी हवेली शहरे लाहौर के दिल कूचा जौहरियाँ में मिल गई।

क्लर्क-2 : आपके दरख़ास्त देते ही आप और बुढ़िया दोनों पहुँच जाएँगे कैम्प में और कोई सिंधी बाइस कमरों की हवेली में दनदनाता फिरेगा।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : कुछ समझ में नहीं आ रहा। क्य करूँ।

क्लर्क-1 : अरे चुप बैठिए।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : और बुढ़िया?

क्लर्क-3 : अरे साहब बुढ़िया न हुई शेर हो गया... क्या आपको खाए जा रही है? क्या आपको मारे डाल रही है? क्या आपको हवेली से निकाले दे रही है? नहीं, तो बैठिए...आराम से।

क्लर्क-1 : क्या उम्र बताते हैं आप?

सिकन्दर

मिर्ज़ा : पैंसठ से ऊपर है।

क्लर्क-2 : अरे जनाब तो बुढ़िया आबे-हयात पिए हुए तो होगी नहीं...दो-चार साल में तहनुम वासिल हो जाएगी...पूरी हवेली पर आपका क़ब्ज़ा हो जाएगा...आराम से रहिएगा आप। क़सम ख़ुदा की बिला वजह परेशान हो रहे हैं।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : बजा फ़रमाते हैं आप...कैम्प में गुज़ारे दो महीने याद आ जाते हैं तो सातों तबक़ रौशन हो जाते हैं। अल अमानो अल हफ़ीज़...अब मैं किसी क़ीमत पर हवेली नहीं छोड़ूंगा...

क्लर्क-2 : अजी मिर्ज़ा साहब एक बुढ़िया को न राहे रास्त पर ला सके तो फिर हद है।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : आ जाएगी...आ जाएगी...वक़्त लेगेगा।

क्लर्क-1 : अरे साहब और कुछ नहीं तो याकूब साहब से बात कर लीजिए...जी हाँ याकूब खां...पूरा काम बना देंगे एक झटके में...

(उंगली गर्दन पर रखकर गर्दन कटने की आवाज़ निकालता है।)

अंतराल गायन

शहर सुनसान है किधर जायें

ख़ाक होकर कहीं बिखर जायें।

रात कितनी गुज़र गयी लेकिन

इतनी हिम्मत नहीं कि घर जायें।

उन उजालों की धुन में फिरता हूँ

छब दिखाते ही जो गुज़र जायें।

रैन अंधेरी है और किनारा दूर

चाँद निकले तो पार उतर जायें।

दृश्य : चार

(सिकन्दर मिर्ज़ा, हमीदा बेगम, तन्नो और जावेद ख़ामोश बैठे हैं सब सोच रहे हैं।)

हमीदा बेगम : तो कस्टोडिय वाले मुए बोले क्या?

सिकन्दर मिर्ज़ा : भई वही तो बताया तुम्हें...उन्होंने कहा इस मामले को आप अपने तौर पर ही सुलझा लें तो आपका फ़ायदा है। क्योंकि अगर आपने इसकी शिकायत की तो कस्टोडियन ऑफ़िसर आपसे ये मकान छीनकर अपने किसी सिंधी अज़ीज़ को दे देगा।

हमीदा बेगम : वाह भाई वाह...ये खूब रही...मारे भी और रोने भी न दें।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ये सब छोड़ो, अब ये बताओ कि इन मोहतरमा से कैसे निपटा जाए।

हमीदा बेगम : ए मैं इस हरामज़ादी की चोटी पकड़कर बाहर निकाले देती हूँ...हो गया क़िस्सा तमाम।

जावेद : और क्या हमारे पास सारे काग़ज़ात हैं।

सिकन्दर मिर्ज़ा : काग़ज़ात तो उसके पास भी हैं।

तन्नो : उसके काग़ज़ात ज़्यादा अहम हैं।

जावेद : क्यों?

तन्नो : भइया, अगर कोई शख़्स इधर-से-उधर गया नहीं तो उसकी जायदाद कस्टोडियन में कैसे चली जाएगी।

सिकन्दर मिर्ज़ा : हाँ, फ़र्ज़ करो बुढ़िया को हम निकाल देते हैं और वो पुलिस में जाकर रपट लिखवाती है कि वो भारत नहीं गयी है और उसकी हवेली पर कस्टोडियन को कोई इख़्तियार नहीं तो क्या होगा।

हमीदा बेगम : फिर क्या किया जाए।

सिकन्दर मिर्ज़ा : बुढ़िया चली भी जाए और हायतोबा भी न मचाये...जावेद मियाँ उसे चुपचाप ले जायें और हिन्दुओं के कैम्प में छोड़ आएँ।

हमीदा बेगम : तो बुलाऊँ उसे?

सिकन्दर मिर्ज़ा : रुक जाओ...बात पूरी तरह समझ लो... देखो उससे ये भी कहा जा सकता है कि पाकिस्तान में अब सिर्फ़ मुसलमान ही रह सकेंगे...और उसे यहाँ रहने के लिए मज़हब बदलना पड़ेगा...ये कहने पर हो सकता है वो भारत जाने के लिए तैयार हो जाए।

हमीदा बेगम : समझ गई...तन्नो बेटी जाओ जाकर उसे आवाज़ दो।

तन्नो : क्या कह कर आवाज़ दूँ...बड़ी बी कहकर पुकारूँ।

हमीदा बेगम : ऐ अपना काम निकालना है, दादी कहकर आवाज़ दे देना, बुढ़िया खुश हो

जाएगी।

(तन्नो लोहे की सलाखों वाले दरवाज़े के पास जाकर आवाज़ देती है)

तन्नो : दादी...दादी.. सुनिए दादी...

(ऊपर से बुढ़िया की काँपती हुई आवाज़ आती है।)

रतन की माँ : कौण है...कौण आवाज दे रेआ है।

तन्नो : मैं हूँ दादी तन्नो...नीचे आइए...

रतन की माँ : आन्दीयाँ बेटी आन्दियाँ।

(रतन की माँ दरवाज़े पर आ जाती है)

रतन की माँ : अज किन्ने दिनां बाद हवेली च दादी दादी दी आवाज़ सुणी ऐ। ***(काँपती आवाज़ में)*** अपनी पौत्री राधा दी याद आ गयी...

तन्नो : ***(घबरा कर)*** दादी, अब्बा और अम्माँ आपसे कुछ बात करना चाहते हैं।

(रतन की माँ दरवाज़ा खोलकर आ जाती है और तन्नो के साथ वहाँ तक आती है जहाँ सिकन्दर मिर्ज़ा और हमीदा बेगम बैठे हैं)

सिकन्दर मिर्ज़ा : आदाब अर्ज़ है...तशरीफ़ रखिए।

हमीदा बेगम : आइए बैठिए।

रतन की माँ : जीन्दे रहो...पुत्तर जीन्दे रहो...त्वाड़ी कुड़ी ने अज मैंनूं 'दादी' कह के पुकारेया **(आँख से आँसू पोंछती हुई)**

सिकन्दर

मिर्ज़ा : माफ़ कीजिए आपके जज़्बात को मजरूह करना हमें मंज़ूर न था। हम आपका दिल नहीं दुखाना चाहते थे...

रतन की माँ : नईं...नईं। दिल कित्थे दुख्या है। उससे मनूं ख़ुश कर देता...बहुत ख़ुश।

सिकन्दर मिर्ज़ा : देखिए...आप हमारी मजबूरी को समझिए...हम वहाँ से लुटे पिटे आए हैं...मालो-दौलत लुट गया...बेसहारा और बेमददगार यहाँ के कैम्प में महीनों पड़े रहे...खाने का ठीक न सोने का ठिकाना...अब खुदा खुदा करके हमें ये मकान एलाठ हुआ है...अपने लिए न सही बच्चों की ख़ातिर ही सही अब लाहौर जमना है। लखनऊ में मेरा चिकन का कारखाना था यहाँ देखिए अल्लाह किस तरह रोज़ी-रोटी देता है...

हमीदा बेगम : अम्माँ, हमने बड़ी तकलीफ़ें उठाई हैं। इतना दुःख उठाया है कि अब रोने के लिए आँख में आँसू भी नहीं हैं।

रतन की माँ : बेटी, तुसी फिक्र न करो...मेरे कोलों जो हो सकेगा, करांगी।

हमीदा बेगम : देखिए हमारी आपसे यही गुज़ारिश है कि ये हवेली हमें एलाट हो चुकी है... और पाकिस्तान बन चुका है...आप हिन्दू हैं...आपका यहाँ रहना ठीक भी नहीं है... आप मतलब...

सिकन्दर मिर्ज़ा : बग़ैर जड़ के दरख़्त कब तक हरा-भरा रह सकता है? आपके अज़ीज़ रिश्तेदार,

मोहल्लेदार सब हिन्दुस्तान जा चुके हैं... अब वही आपका मुल्क है...आप यहाँ कब तक रहिएगा?

हमीदा बेगम : अभी तक तो फिर भी ग़नीमत है... लेकिन सुनते हैं पाकिस्तान में जितने भी ग़ैर मुस्लिम रह जायेंगे उन्हें ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाया जाएगा...इसलिए...

रतन की माँ : बेटी, कोई बार-बार नहीं मरता...मैं मर चुकी हाँ मैनूं पता है रतन और उसदे बीवी बच्चे हुण इस दुनियाँ विच नई है...मौत और जिन्दगी विच मेरे वास्ते कोई फर्क नई बचया।

सिकदर मिर्ज़ा : लेकिन...

रतन की माँ : हवेली त्वोड नाम एलाट हो गयी है। तुसी रहो। त्वानु रहने तो कौन रोक रया है...जित्थे तक मेरी हवेली तो निकल जाण दा स्वाल है...मैं पहले ही मना कर चुकी आं...

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(गुस्से में)*** देखिए आप हमें गैर मुनासिब हरकत करने के लिए मजबूर...

रतन की माँ : अगर तुसी इस तरह ही समझते हो तां जो मरजी आए करो...

(रतन की माँ उठकर सीढ़ियों की तरफ़ चली जाती हैं।)

हमीदा बेगम : निहायत सख़्त दिल औरत है, डायन।

तन्नो : किसी बात पर तैयार ही नहीं होती।

जावेद : अब्बा जान अब मुझे इजाज़त दीजिए।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : ठीक है बेटा...तुम जो चाहो करो...

हमीदा बेगम : लेकिन ख़तरा न उठाना बेटा।

जावेद : ***(हंसकर)*** ख़तरा...

(अंतराल गायन)

फूल ख़ुश्बू से जुदा है अबके

यारों ये कैसी हवा है अबके

पत्तियाँ रोती हैं सिर पीटती हैं

क़त्ले गुल आम हुआ है अबके

मंज़रे ज़ख़्मे वफ़ा किसको दिखायें

शहर में कहते वफ़ा है अबके

वो तो फिर ग़ैर थे लेकिन यारों

काम अपनों से पड़ा है अबके

दृश्य : पांच

(चाय की दुकान। अलीमउद्दीन चायवाला, जावेद मिर्जा, पहलवान अनवर, सिराज, रज़ा, नासिर काज़मी। अलीमुउद्दीन चाय बना रहा है। पहलवान अनवर, सिराज और रज़ा चाय पी रहे हैं।)

पहलवान : ओय अलीम, इधर कितने मकान एलाट हो गए।

अलीम : इधर तो समझो गली की गली ही एलाट हो गई पहलवान।

पहलवान : मोहिन्दर खन्ना वाला मकान किन्नू एलाट हुआ है?

अलीम : अब मैं क्या जानूं पहलवान...ये जो उधर से आए हैं अपनी तो समझ में आए नहीं...छटांक-छटांक भर के आदमी... लस्सी का एक गिलास नहीं पिया जाता उनसे...

पहलवान : अबे तू ये सब छड्ड...मैं पूछ रिहा सी मोहिन्दर खन्ना वाले मकान में कौन आया है।

अलीम : कोई शायर हैं...नासिर काज़मी।

पहलवान : तां गया मोहिन्दर खन्ना का भी मकान... और रतन जौहरी दी हवेली।

अलीम : उसमें तो परसों ही कोई आया है... तांगे पर सामान-वामान लाद कर... उसका लड़का कल ही इधर से दूध ले गया है...उधर कुछ मुसीबत हो गयी है

पहलवान। कुछ समझ नहीं आ रिया।

पहलवान : की गल्ल है?

अलीम : अरे कह रिया था रतन जौहरी की माँ...तो हवेली में है।

पहलवान : *(उछलकर)* नहीं।

अलीम : हाँ हाँ पहलवान...वही लड़का बता रहा था...बेचारा बड़ा परेशान था। कह रिया था...छह महीने बाद मकान भी एलाट हुआ तो ऐसा जहाँ कोई रह रिया है।

पहलवान : तुझे कैसे मालूम कि वो रतन जौहरी की माँ है?

अलीम : लड़का बता रहा था उस्ताद...

पहलवान : *(धीरे से)* वह बच कैसे गयी...इसका मतलब है अभी और बहुत कुछ दब रख्या है उसने...

अनवर : बाइस कमरों की तो हवेली है उस्ताद कहीं छुपक गयी होगी।

सिराज : एक-एक कमरा छान मारा था हमने तो।

पहलवान : रज़ा, तू चला जा और उस नू बुला ले आ...

अलीम : किसे?

पहलवान : ओसे नू जिस नू रतन जौहरी की हिवेली एलाट हुई है।

अलीम : पहलवान...उसके बाप को एलाट हुई है।

पहलवान : अरे तू मुण्डे को ही बुला ला...

रज़ा : ठीक है पहलवान।

(रज़ा निकल जाता है।)

पहलवान : **(हाथ रगड़ते हुए)** अभी दही और मथा जाएगा...अभी घी और निकलेगा।

अनवार : लगता तो यही है उस्ताद।

पहलवान : ओय लगता क्या पक्की गल्ल है।

(नासिर काज़मी आते हैं। पहलवान उनकी तरफ़ शक्की नज़रों से देखता है)

अलीम : सलाम अलैकुम काज़मी साहब।

नासिर : वालैकुम सलाम...कहो भाई चाय-वाय मिलेगी?

अलीम : हाँ-हाँ बैठिए काज़मी साहब...बस भट्ठी सुलग ही रही है।

(नासिर बैंच पर बैठ जाते हैं)

पहलवान : त्वाडी तारीफ़।

नासिर : वक्त के साथ हम भी ऐ 'नासिर'

ख़ार-ओ-ख़स की तरह बहाये गए।

(चाय की चुस्की लेकर पहलवान से) आपकी तारीफ़?

पहलवान : ***(फ़ख्र से)*** क़ौम का ख़ादिम हाँ।

नासिर : तब तो आपसे डरना चाहिए।

पहलवान : क्यों?

नासिर : ख़ादिमों से मुझे डर लगता है।

पहलवान : क्या मतलब।

नासिर : भई दरअलस बात ये है कि दिल ही नहीं बदले हैं लफ़्ज़ों के मतलब भी बदल गए हैं...ख़ादिम का मतलब हो गया है हाकिम...और हाकिम से कौन नहीं डरता?

अलीम : ***(ज़ोर से हंसता है)*** चुभती हुई बात कहना तो कोई आपसे सीखे नासिर साहब!

नासिर : भई बक़ौल 'मीर'-

हमको शायर न कहो 'मीर' के हमने साहब

रंजोग़म कितने जमा किए कि दीवान किया।

तो भई जब तार पर चोट पड़ती है तो नग़्मा आप फूटता है।

(रज़ा और अलीम जावेद के साथ आते हैं)

पहलवान : सलाम अलैकुम...

जावेद : वालेकुमस्सलाम।

पहलवान : तुसी लोकां नू रतन जौहरी दी हवेली एलाट हुई है।

जावेद : जी हाँ।

पहलवान : सुन्या उसमें बड़ा झगड़ा है।

जावेद : आपकी तारीफ़?

(पहलवान ठहाका लगाता है)

अलीम : पहलवान को इधर बच्चा-बच्चा जानता है...पूरे मुहल्ले के हमदर्द हैं...जो काम किसी से नहीं होता पहलवान बना देते हैं।

सिराज : वलीशाह के अखाड़े के उस्ताद हैं पहलवान।

अनवर : हम सब पहलवान के चेली चापड़ हैं।

पहलवान : हाँ तो क्या झगड़ा है?

जावेद : रतन जौहरी की माँ हवेली में रह रही है।

पहलवान : ये कैसे हो सकदा है।

जावेद : है...हमने उसे देखा है, उससे बात की है...

पहलवान : तां फिर की सोचा है?

जावेद : अजीब बुढ़िया है...कहती है मैं कहीं नहीं जाऊँगी हवेली में ही रहूँगी।

पहलवान : ज़रूर तगड़ा मालपानी गाड़ रखा होगा।

तो तूं की कीता?

जावेद : अब्बा कस्टोडियन के दतर गए थे। दतर वाले कहते हैं, हवेली खाली कर दो। तुम्हें दूसरी दे देंगे।

पहलवान : ए चंगी रही...बुड्डी से नहीं खाली कराएँगे...तुमसे करायेंगे...फेर?

जावेद : फिर क्या, हम लोग तो बड़े परेशन हैं।

पहलवान : ओय इसमें परेशानी की तो कोई बात नहीं है।

जावेद : तो क्या करें?

पहलवान : तू कुछ नहीं कर सकेगा...करेगा वही जो कर सकता है।

(नासिर उठकर चले जाते हैं)

जावेद : क्या मतलब?

पहलवान : साफ़-साफ़ सुण ले...जब तक बुढ़िया ज़िंदा है हवेली पर तुम्हारा क़ब्ज़ा नहीं हो सकता...और बुढ़िया से तुम निपट नहीं सकते...उसी उस नू ठिकाणे लगा सकदे हाँ...पर ओ वी आसान नहीं है...पहले जो काम मुफ़्त हो जान्दा सी अब उसके पैसे लगने लगे हैं...समझे।

जावेद : हाँ, समझ गया।

पहलवान : अपने अब्बा नू कह...दो-चार हज़ार रुपए दे...लालच में कहीं लक्खा दी हवेली हाथ स न निकल जाए।

अंतराल गायन

शहर दा शहर घर जलाए गए

यूँ भी जश्ने तरब मनाए गए

एक तरफ़ झूम कर बहार आई

एक तरफ़ आश्याँ जलाए गए

क्या कहूँ किस तरह सरे बाज़ार

अस्मतों के दिए बुझाए गए

आह तो ख़िलवतों के सरमाए

बज़म-ए-आम में लुटाए गए

वक़्त के साथ हम भी ऐ नासिर

ख़ार-ओ-ख़स की तरह बहाए गए।

दृश्य : छः

(हमीदा बेगम बैठी सब्ज़ी काट रही हैं। तन्नो आती है।)

तन्नो : अम्माँ, बेगम **हिदायत** हुसैन कह रही हैं कि उनका नौकर टाल पर कोयले लेने गया था, वहाँ कोयले ही नहीं हैं। कह रही हैं हमें एक टोकरी कोयले उधार दे दो...कल वापस कर देंगे।

हमीदा बेगम : ऐ बीवी होशों में रहो...हमें क्या हक़ है... दूसरों की चीज़ उधार देने का...कोयले तो रतन की अम्माँ के हैं।

तन्नो : अम्माँ, **हिदायत** साहब ने कुछ लोगों का खाने पर बुलाया है। भाभी जान बेचारी बेहद परेशान हैं। घर में न लकड़ी है...ना कोयले...खाना पक्के तो काहे पर पक्के।

हमीदा : ए तो मैं क्या बताऊँ...रतन की अम्माँ से पूछ लो...कहे तो एक टोकरी क्या चार टोकरी दे दो।

(तन्नो सीढ़ियों की तरफ़ जाती है और आवाज़ देती है।)

तन्नो : दादी...दादी माँ...सुनिए...दादी माँ...

(ऊपर से आवाज़)

रतन की माँ : आई बेटी आई...तू जुग जुग जीवें **(आते हुए)** मैं जादवी तेरी आवाज सुनदी आं... मनूं लगदा हय कि मैं जिन्दा हाँ...

(रतन की माँ सीढ़ियों पर से उतर कर दरवाज़े में आती है और ताला खोलने लगती है।)

रतन की माँ : तेरी माँ दी तबीअत कैसी है।

तन्नो : अच्छी है।

रतन की माँ : कल रत किस दे कन विच दर्द हो रिआ सी।

तन्नो : हाँ, अम्माँ के ही कान में था।

रतन की माँ : तां फिर मेरे तों दवा लै लैंदी...ए छोटे-मोटे इलाज ते मैं खुद कर लेंदी हाँ।

(रतन की माँ चलती हुई हमीदा बेगम के पास आ जाती है।)

हमीदा बेगम : आदाब बुआ।

रतन की माँ : बेटी...तू मेरी पुत्तर दे बराबर है...माँ जी बुलाया कर मैंनूं।

हमीदा बेगम : बैठिए माँजी।

(रतन की माँ बैठ जाती है।)

रतन की माँ : मैं कय रही सी कि छोटी-मोटी बीमारियाँ दी दवाइयाँ मैं अपने कोल रखदी हाँ। रात-बिरात कदी ज़रूरत पै जाये ते संकोच नईं करना।

तन्नो : दादी, पड़ोस के मकान में **हिदायत** हुसैन साहब हैं न।

रतन की माँ : कौन से मकान विच, गजाधर वाले मकान विच?

तन्नो : जी हाँ...उनकी बेगम को एक टोकरी कोयलों की ज़रूरत है। कल वापस कर देंगी...आप कहें तो...

रतन की माँ : ***(बात काट कर)*** लै भला ऐ वी काई पूछन दी गल है। इक टोकरी नहीं दो टोकरी दे देवो।

(तन्नो ख़ुशी-ख़ुशी भाग जाती है।)

हमीदा बेगम : ये बताइए माँ जी यहाँ लाहौर में चचीडे नहीं मिलते? हमारे यहाँ लखनऊ में तो यही मौसम है चचीडों का...कड़वे तेल और अचार के मसाले में बड़े लज़ीज़ पक्ते हैं।

रतन की माँ : चचीडे...कैसे होंदे ने बेटी, मैनूं समझाओ...साडी पंजाबी विच की कैंदे ने उना नूं?

हमीदा बेगम : माँजी ककड़ी से थोड़ा ज़्यादा लम्बे-लम्बे। हरे और सफ़ेद होते हैं...चिकने होते हैं।

रतन की माँ : लै भला...साडे वल होंदे क्यों नहीं...बहुत होंदे ने...ओना नू इद्दर खिराटा कैंदे ने...अपने पुत्तर से कहना सब्ज़ी बाज़ार विच रहीम दी दुकान पूछ लै...उत्थे मिल जाएँगे।

हमीदा बेगम : ऐ ये शहर तो हमारी समझ में आया नहीं...यहाँ निगोड़मारी समनक नहीं मिलती।

रतन की माँ : बेटी लाहौर तों बड्डा दूजा शहर तो साइडे हिन्दुस्तान विच है ही नहीं...मसल मशहूर है कि जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ ही नई।

हमीदा बेगम : ऐ लेकिन लखनऊ का क्या मुक़ाबला।

रतन की माँ : मैं तां कदी लखनऊ गयी सी...हाँ चाली साल पहले दिल्ली ज़रूर गई सी...बड़ा उजड़या-उजड़या शहर सी।

हमीदा

बेगम : माँ जी यहाँ रुई कहाँ मिलती है।

रतन की माँ : रुई...अरे रुई तो बहुत बड्डा बाज़ार है... देखो जावेद नू कहो एत्थों से निकले रेज़ीडेंसी रोड तो गली हारीओम वाली च मुड़ जाए, उत्थों से छत्ता अकबर खां पहुँचेगा...उत्थे दो गलियाँ जान्दियाँ सज्जे खब्बे दिखाई देंणगियाँ..एक है गली रुई वाली...सैंकड़ों रुई दियाँ दुकानां। **(सिकन्दर मिर्ज़ा अन्दर आते हैं। रतन की माँ को देख कर बुरा-सा मुँह बनाते हैं।)**

रतन की माँ : जीते रहो पुत्तर...कैसे हो।

सिकन्दर मिर्ज़ा : दुआ है आपकी...शुक्र है अल्लाह का।

रतन की माँ : ***(उठते हुए)*** बेटी लाहौर विच सब कुछ मिलदा है...जद कोई दिक्कत होय तां मनुं पूछ लेणा...चप्पे-चप्पे तो वाकिफ हाँ लाहौर दे.. अच्छ जीदी रह...मैं चलां।

(चली जाती है।)

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(बिगड़कर)*** ये क्या मज़ाक़ है...हम इनसे पीछा छुड़ाने के चक्कर में हैं और आप इन्हें गले का हार बनाये हुए हैं।

हमीदा बेगम : ए नौज, मैं क्यों उन्हें बनाने लगी गले का हार। **हिदायत** हुसैन साहब की ज़रूरत न होती तो मैं बुढ़िया से दो बातें भी न करती।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : **हिदायत** हुसैन की ज़रुरत?

हमीदा बेगम : जी हाँ...घर में कोयले हैं न लकड़ी... दोस्तों को दावत दे बैठे हैं...बेगम बेचारी परेशान थी। लकड़ी की टाल पर भी कोयले नहीं थे। हमसे माँग रही थ तब ही बुढ़िया को बुलाया था। कोयले तो उसी के हैं न।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(गुस्से में)*** देखिए उसका इस घर में कुछ नहीं है...एक सुई भी उसकी नहीं है। सब कुछ हमारा है।

हमीदा बेगम : ये कैसी बातें कर रहे हैं आप।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(सख़्त आवाज़ में)*** बेगम हम इसी तरह दबते रहे तो ये हवेली हाथ से निकल जायेगी...

(तन्नो की तरफ़ देखकर, जो सब्ज़ी काट रही है।)

तन्नो तुम यहाँ से ज़रा हट जाओ बेटी... तुम्हारी अम्माँ से मुझे कुछ ज़रूरी बात करनी है।

(तन्नो हट जाती है।)

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(राज़दारी से)*** जावेद ने बात कर ली है...इस बुढ़िया से पीछा छुड़ा लेना ही बेहतर है...कल को इसका कोई रिश्तेदार आ पहुँचा तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

हमीदा बेगम : लेकिन कैसे पीछा छुड़ाओगे।

सिकन्दर

मिर्ज़ा हमीदा : जावेद ने बात कर ली है।

बेगम : अरे किससे बात कर ली है...क्या बात कर ली है?

सिकन्दर

मिर्ज़ा हमीदा : वो लोग एक हज़ार रुपए माँग रहे हैं।

बेगम : क्यों...एक हज़ार तो बड़ी रक़म है।

सिकन्दर

मिर्ज़ा हमीदा : बुढ़िया जहन्नुम वासिल हो जायेगी।

बेगम : ***(चौंक कर, घबरा और डर कर)*** नहीं।

सिकन्दर

मिर्ज़ा हमीदा : और कोई रास्ता नहीं है।

बेगम : नहीं...नहीं...खुदा के लिए नहीं...मेरे जवान जहान बच्चे हैं, मैं इतना बड़ा अज़ाब अपने सिर नहीं ले सकती।

सिकन्दर

मिर्ज़ा हमीदा : क्या बकवास करती हो।

बेगम : नहीं...कहीं हमारे...मेरी क़सम...ये न कीजिए। उसने हमारा बिगाड़ा ही क्या है।

सिकन्दर

मिर्ज़ा हमीदा : ये वहेम है तुम्हारे दिल में।

बेगम : वहेम नहीं...मेरा तो कलेजा मुँह को आ रहा है।

सिकन्दर

मिर्ज़ा : बेगम एक कांटा है जो निकल गया तो

ज़िन्दगी भर के लिए आराम ही आराम है।

हमीदा बेगम : हाय मेरे अल्लाह, इतना बड़ा गुनाह... जब हम किसी को ज़िन्दगी दे नहीं सकते तो हमें छीनने का क्या हक़ है?

सिकन्दर मिर्ज़ा : वो काफ़िरा है बेगम।

हमीदा बेगम : ***(ठहरी हुई सख़्त आवाज़ में)*** इसका ये तो मतलब नहीं कि उसे क़त्ल करा दिया जाये। मैं तो हरगिज़-हरगिज़ इसके लिए तैयार नहीं हूँ।

सिकन्दर मिर्ज़ा : अब तुम समझ लो।

हमीदा बेगम : नहीं...नहीं...तुम्हें बच्चों की क़सम ये मत करवाना।

अंतराल गायन

दिल में इक लहर-सी उठी है अभी
कोई ताज़ा हवा चली है अभी

शोर बरपा है ख़ान-ए-दिल में
कोई दीवार-सी गिरी है अभी

भरी दुनिया में जी नहीं लगता
जाने किस चीज़ की कमी है अभी

शहर की बे चिराग़ गलियों में
ज़िन्दगी तुझको ढूंढती है अभी

वक़्त अच्छा भी आएगा 'नासिर'
ग़म न कर ज़िन्दगी पड़ी है अभी

दृश्य : सात

(सिकन्दर मिर्ज़ा बैठे अख़बार पढ़ रहे हैं। दरवाज़े पर कोई दस्तक देता है।)

सिकन्दर मिर्ज़ा : आइए...तशरीफ़ लाइए।

(पहलवान याकूब के साथ अनवार, सिराज, रज़ा और मुहम्मद शाह अन्दर आते हैं।)

सब एक साथ : सलाम अलैकुम...

सिकन्दर मिर्ज़ा : वालेकुम सलाम...तशरीफ़ रखिए।

(सब बैठ जाते हैं।)

पहलवान : आपका इस्मे शरीफ़ सिकन्दर मिर्ज़ा है न?

सिकन्दर मिर्ज़ा : जी हाँ।

पहलवान : ये कूचा जौहरियाँ विच रतनलाल जौहरी की हवेली है ना?

सिकन्दर मिर्ज़ा : जी हाँ बेशक।

पहलवान : ये मेरे दोसत हैं मुहम्मद शाह। इनको हवेली की दूसरी मंज़िल एलाट होइ है।

सिक-

न्दर

मिर्ज़ा : ***(हैरत से)*** जी... ***(ठहरकर)*** ये हवेली तो एक माह पहले मुझे एलाट हो चुकी है।

मुहम्मद शाह : लेकिन पहली मंज़िल तो आपके क़ब्ज़े में नहीं है न?

सिक-न्दर मिर्ज़ा : ये आपको किसने बताया?

पहलवान : त्वाडा बेटा जावेद कय रिया सी कि ऊपर वाली मंज़िल में रतनलाल जौहरी दी माँ रह रही है। मतलब पाकिस्तान ओ वी शहरे-लाहौर में एक काफ़िरा...

सिक-न्दर मिर्ज़ा : अच्छा तो आप वही हैं जिनसे जावेद की बात हुई थी।

पहलवान : हाँ, जी हाँ जी...

सिक-न्दर मिर्ज़ा : तो जनाब मुहम्मद शाह, आपके नाम ऊपरी मंज़िल एलाट नहीं हुई है...आप बस उस पर क़ब्ज़ा...

पहलवान : आप ठीक समझे...काफ़िरा के रहने से तो अच्छा है कि अपना कोई मुसलमान भाई रहे।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : लेकिन ये पूरी हवेली मुझे एलाट हुई है।

पहलवन : ठीक है...ठीक है लेकिन क़ब्ज़ा ता नहीं त्वाडा ऊपरी मंज़िल ते।

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : आपको इससे क्या मतलब।

पहलवा
न : इसदा तां ए मतलब निकलदा है कि तुसी एक हिन्दू काफ़िरा नू अपने घर विच छुपा रख्या है।

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : (सख़्त लहजे में) तो तुम मुझे धमका रहे हो पहलवान।

रज़ा : जी नहीं, बात दरअसल ये है...

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : ***(बात काट कर)*** कि ऊपर के ग्यारह कमरे क्यों न आप लोगों के क़ब्ज़े में आ जाएँ...

पहलवा
न : असी तां इस्लामी बिरादरी ने नाते त्वाडी मदद करने आए सी। पर त्वानू मुसलमान तो ज़्यादा काफ़िर प्यारा है।

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : मुहम्मद शाह साहब। आप कस्टोडियन वालों को बुलाकर ले आएँ...वो आपको क़ब्ज़ा दिला सकते हैं...इस बात में इस्लाम और कुफ़्र कहाँ से आ गया।

पहलवा
न : मिर्ज़ा साहब तुसी दस्स सकदे हो कि पाकिस्तान इसीलिए बन्या सी कि इत्थे काफिर रहें?

सिक-
न्दर
मिर्ज़ा : (रूखे लहजे में) ये आप पाकिस्तान बनवाने वालों से पूछिए।

पहलवा
न : मिर्ज़ा साहब हम ये गवारा नहीं कर

सकदे कि शहरे लाहौर दे कूचा जौहरियाँ में कोई काफ़िर दनदनाता फिरे।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जनाब वाला आप कहना क्या चाहते हैं मैं ये समझने से क़ासिर हूँ।

पहलवान : साडा इशारा समझो...असी एक मिनट में ऊपरी मंज़िल दा फ़ैसला कर देंगे। उत्थे उस काफ़िरा दी जगह मुहम्मद शाह...

सिकन्दर मिर्ज़ा : मशविरे के लिए शुक्रिया।

पहलवान : मिर्ज़ा, फिर ओ नइ हो सकेगा जैसा तुसी चांदे हो...किसी काफ़िरा दे वजूद नू इत्थे नहीं बर्दाश्त किता जाएगा...

(उठते हुए सबसे) चलो।

(सिकन्दर मिर्ज़ा हैरत और डर से सबको देखते हैं। वे चले जाते हैं। कुछ क्षण बाद हमीदा बेगम अन्दर आती हैं।)

हमीदा बेगम : क्यों साहब ये कौन लोग थे...ऊँची आवाज़ में क्या बातें कर रहे थे।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ये वही बदमाश था जिससे जावेद ने बात की थी।

हमीदा बेगम : लेकिन।

सिकन्दर मिर्ज़ा : हाँ, फिर जावेद ने उसे मना कर दिया था। साफ़ कह दिया था कि ऐसा हम नहीं चाहते...लेकिन कम्बख़्त को ग्यारह

कमरों का लालच यहाँ खींच लाया।

हमीदा बेगम : क्या मतलब?

सिकन्दर मिर्ज़ा : पहले कहने लगा कि उसे कस्टोडियन वालों ने ऊपरी मंज़िल के ग्यारह कमरेएलाट कर दिए हैं।

हमीदा बेगम : हाय अल्ला...ये कैसे...एक मकान दो आदमियों को कैसे एलाट हो सकता है?

सिकन्दर मिर्ज़ा : वो सब झूठ है...

हमीदा बेगम : फिर...

सिकन्दर मिर्ज़ा : फिर इस्लाम का ख़ादिम बन गया। कहने लगा पाकिस्तान के शहरे लाहौर में कोई काफ़िरा कैसे रह सकती है... जाते-जाते धमकी दे गया है कि रतन लाल जौहरी की माँ का काम तमाम कर देगा।

हमीदा बेगम : हाय अल्ला...अब क्या होगा।

सिकन्दर मिर्ज़ा : आदमी बदमाशा है...मेरे ख़्याल से उसे शक है कि रतन की माँ ने 'कुछ' दाब रखा है...दरअसल उसकी नज़र 'उसी' पर है।

हमीदा बेगम : हाय तो क्या मार डालेगा बेचारी को?

सिकन्दर मिर्ज़ा : कुछ भी कर सकता है।

हमीदा

बेगम : ये तो बड़ा बुरा होगा।

सिकन्दर मिर्ज़ा : (उलझते हुए) अजी फँसेंगे तो हम...वो तो मार-मूर और लूट खा कर चल देगा... फंस जायेंगे हम लोग।

हमीदा बेगम : हाय अल्ला फिर क्या करूँ।

सिकन्दर मिर्ज़ा : रात में दरवाज़े अच्छी तरह बंद करके सोना।

हमीदा बेगम : सुनिए, उनको बताऊँ या न बताऊँ। **(सिकन्दर मिर्ज़ा सोच में पड़ जाते हैं।)**

हमीदा बेगम : बताना तो हमारा फ़र्ज़ है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : कहीं 'वो' ये न समझे कि ये सब हमारी चाल है?

हमीदा बेगम : लो, ये तुमने और उलझन में डाल दिया।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ऐसा करो कि उनकी हिफ़ाज़त का पूरा इंतेज़ाम इस तरह करो कि उन्हें पता न लगने पाए।

हमीदा बेगम : ये कैसे हो सकता है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : यहीं तो सोचना है।

हमीदा बेगम : हाय अल्ला ये सब क्या हो रहा है...क्या

मैं फरियादी मातम पढ़ूँ...

सिकन्दर मिर्ज़ा : इमामबाड़ा कहाँ है घर में...ख़ैर... देखो...वो अकेली रहती है...उनके साथ किसी मर्द का रहना...

हमीदा बेगम : मतलब तुम...

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(घबरा कर)*** नहीं...नहीं...जावेद...

हमीदा बेगम : वो जावेद को ऊपर क्यों सुलायेंगी...और जावेद को मैं वैसे भी नहीं जाने दूंगी।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ज़िद मत करो।

हमीदा बेगम : क्या चाहते हो...मेरा एकलौता लड़का भी...

सिकन्दर मिर्ज़ा : बकवास मत करो।

हमीदा बेगम : फिर क्या करूँ।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(डरते-डरते)*** तुम वहाँ...उसके साथ सो जाओ...

हमीदा बेगम : ***(जलकर)*** लो मर्द होकर मुझे आग के मुँह में झोंक रहे हो।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(झुंझला कर)*** अरे तो मैं...वहाँ सो भी नहीं सकता।

हमीदा बेगम : ठीक है तो मैं ही ऊपर जाती हूँ।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : नहीं।

हमीदा बेगम : ये लो...अब फिर नहीं।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : ठीक है, देखो उनसे कहना...

हमीदा बेगम : (जल कर) अरे मुझे अच्छी तरह मालूम है। उनसे क्या कहना है। क्या नहीं कहना।

अंतराल गायन

मैं हूँ रात का एक बजा है
ख़ाली रस्ता बोल रहा है

आज तो यूँ ख़ामोश है दुनिया
जैसे कुछ होने वाला है

कैसी अंधेरी रात है देखो
अपने आपसे डर लगता है।

ऐसा गाहक कौन है जिसने
सुख देकर दुःख मोल लिया हो

मैं हूँ रात का एक बजा है
ख़ाली रस्ता बोल रहा है।

दृश्य : आठ

(मस्जिद में मौलाना इकरामउद्दीन नमाज़ पढ़ रहे हैं। पहलवान और अनवार अंदर आते हैं। मौलाना को नमाज़ पढ़ते देखकर अलग खड़े हो जाते हैं। मौलाना नमाज़ पढ़ने के बाद पीछे मुड़ते हैं।)

पहलवान : सलाम अलैकुम मौलवी साहब।

मौलवी : वालकुमस्सलाम...

(पहलवान और अनवार आगे बढ़कर मौलाना से मुसाफ़ा करते हैं और उनके हाथ चूमते हैं)

मौलवी : अल्लाह त्वाडे दिलां नू अपने नूर नाल रौशन रखे...आओ...बैठो...

(तीनों मस्जिद की चटाई पर बैठ जाते हैं)

मौलवी : कहो सब ख़ैरियत है?

पहलवान : हाँ जी...हाँ जी...

(इधर-उधर देखकर कि मस्जिद में कुछ अंधेरा-सा है और रौशनी कम है और ताक़ पर रखा एक दिया जल रहा है)

पहलवान : मैं इद्दर एक पैट्रोमैक्स लै आवांगा।

मौलवी : ख़ुदा का घर तो रोज़े-नमाज़ से रौशन होंदा है। पहलवान...तुसी नमाज़ पढ़न आया करो.

पहलवान : **(घबराकर)** आ-वांगे जी...आ-वांगे...

ज़रूर आ-वांगे।

मौलवी : इस वक़्त किवें आणा होया?

पहलवा
न : जी वो गल्ल ये है की...

(रुक जाता है)

मौलवी : तुसी अल्ला दे घर विच हो...इत्थे घबराना चंगा नहीं लगदाा...दस्सो?

पहलवा
न : ओ जी...गल्ल ए है कि इत्थे कुफ़्र फैल रिया सी।

मौलवी : की कुफ़्र पुत्तर?

पहलवा
न : बड़ा भारी कुफ़्र है जी।

मौलवी : तुसी दस्सो।

पहलवा
न : अपने मोहल्ले विच एक हिन्दू और रह गई सी।

मौलवी : रह गई सी, मतलब?

पहलवा
न : भारत नहीं गई सी।

मौलवी : तां?

पहलवा
न : ***(घबराकर)***...तां...इत्थे ही छुप गई सी। भारत नहीं गई।

मौलवी : तो फिर?

पहलवा
न : (बनावटी आश्चर्य दिखाता हुआ) की हिन्दू औरत इत्थे रह सकदी है?

मौलवी : ***(हँसकर)*** हाँ...हाँ...क्यों नहीं।

अनवान : कुछ समझे नहीं मुल्ला जी।

पहलवा
न : तुसी देखो जी साडे दुश्मन साडे विच छिपे ने...

मौलाना : कौन दुश्मन...

पहलवा
न : हिन्दू...

मौलवी : वान्ने अहज़ मनउल मुशरीकन अस्त आदक फार्जिदा...हुक्मे खुदाबन्दी है कि

अगर मुशरिकीन में से कोई तुमसे पनाह माँगे तो उसको पनाह दो।

पहलवान : असी अपने मुसलमान भाइयाँ दा क़त्ले-आम देख्या है। साडे दिलां च बदले की आग भड़क रही है।

मौलवी : पुत्तर ज़ुल्म को ज़ुल्म से ख़त्म नहीं कर सकदे...नेकी, शराफ़त, ईमानदारी से ज़ुल्म ख़त्म होंदा है...जो ज़ुल्म करदे ओ मुसलमान नहीं है...समझे...इरशाद है तुम ज़मीन वालों पर रहम करो, आसमान वाला तुम पर रहम करेगा।

(पहलवान और अनवार ख़ामोश हो जाते हैं और अपने सिर झुका लेते हैं।)

पहलवान : हिन्दुओं ने साडे ऊपर बड़े ज़ुल्म कीते सी मौलवी साहब...असी भूल नहीं सकदे... ट्रेनां दी ट्रेनां कटके भेजियाँ सी. औरतां ते बच्चियाँ नूं गाजर मूली दी तरह कट दित्ता सी।

मौलवी : तुसी ओइ करना चाहन्दे हो?

पहलवान : हाँ बदला लेना...

मौलवी : इरशाद है कि गुस्सा पी जाया करो और लोगों को माफ़ कर दिया करो।

(दोनों के मुँह लटक जाते हैं)

पहलवान : रतनलाल दी माँ भारत चली जाएगी तो...उत्थे कोई मुसलमान बिरादर रहेगा?

मौलवी : मुसलमान बिरादर अपने बलबूते किंदे होर नइ रह सकदा? उस नू बुड्ढी औरत दा मकान ही चाइदा है?

(फिर दोनों के मुँह लटक जाते हैं)

मौलवी : लड़ना ही है तो अपने नफ़्स से लड़ो...

वही सबसे बड़ा जिहाद सी...खुदगर्ज़ी,

लालच, आरामो-असाइश से लड़ो...

बेहारा ते बुड्ढी

औरत नाल लड़ना इस्लाम नहीं है।

(अंतराल गायन)

ऐसा भी कोई सपना जागे

साथ मेरे इक दुनिया जागे

वो जागे जिसे नींद न आये

या कोई मेरा जैसा जागे

हवा चले तो जंगल जागे

नाव चले तो नदिया जागे

ऐसा भी कोई सपना जागे

साथ मेरे इक दुनिया जागे

दृश्य : नौ

(सुबह का वक़्त है। अलीम अपने चायख़ाने में है। भट्टी सुलगा रहा है। उसी वक़्त नासिर काज़मी और उनके पीछे-पीछे तांगेवाला हमीद अपने हाथ में चाबुक लिए अन्दर आते हैं।)

नासिर काज़मी : हमीद मियाँ बैठो...रोज़ की तरह आज भी अलीम पूरी रात सोता रहा है और भट्टी ठण्डी पड़ी रही।

अलीम : आप बड़ी सुबह-सुबह आ गए नासिर साहब।

नासिर : भाई, जो रात में सोया हो, उसी के लिए तो सुबह होती हे।

अलीम : क्या पूरी रात सोए नहीं?

नासिर : बस मियाँ पूरी रात आवारागर्दी और पांच शेर की ग़ज़ल की नज़र हो गई।

हमीद : वैसे भी आप कहाँ सोते हैं?

नासिर : रातें, किसी छत के नीचे सोकर बर्बाद कर देने के लिए नहीं होतीं।

अलीम : क्यों नासिर साहब?

नासिर : इसलिए कि रात में ही दुनिया के अहम काम होते हैं। मिसाल के तौर पर फूलों में रस पड़ता है रात को...समन्दरों में ज्वार-भाटा आता है रात को...ख़ुशबुएँ रात को ही जनम लेती हैं, फरिश्ते रात को ही उतरते हैं।

अलीम : आपकी बातें मेरी समझ में तो आती नहीं।

नासिर : इसका ये मतलब तो नहीं कि चाय न पिलाओगे।

अलीम : ज़रूर ज़रूर, बस दो मिनट में तैयार होती है।

(भट्ठी सुलगाने लगता है।)

अलीम : नासिर साहब कुछ नौकरी वग़ैरा का सिलसिला लगा?

नासिर : नौकरी? अरे भाई शायरी से बड़ी भी कोई नौकरी है?

अलीम : ***(हँसकर)*** शायरी नौकरी कहाँ होती है नासिर साहब।

नासिर : भई देखो, दूसरे लोग आठ घंटे की नौकरी करते हैं...कुछ लोग...दस घंटे काम करते हैं...कुछ बेचारों से तो बारह-बारह घंटे काम लिया जाता है। लेकिन हम शायर तो अपनी शायर की नौकरी चौबीस घण्टे करते हैं...जब चाहती है शायरी, हमें आवाज़ देकर बुला लेती है।

(नासिर ज़ोर से हँसते हैं। हमीद उसका साथ देता है।)

हमीद : पूरी रात आप टालते आये...अब तो कुछ शेर सुना दीजिए नासिर साहब।

(पहलवान, अनवार, सिराज और रज़ा अंदर आते हैं।)

पहलवान : ला जल्दी-जल्दी चार चाय पिला।

अलीम : अच्छे मौक़े से आ गये पहलवान।

पहलवान : क्यों? क्या हुआ।

अलीम : नासिर साहब ग़ज़ल सुना रहे हैं।

पहलवान : ओ भई असी की लेना-देना है, ग़ज़ल-वज़ल तो...ए सब झूठी गल्लां हैं....

नासिर : झूठ क्या है पहलवान और सच क्या है?

पहलवान : असी ग़ज़ल-वज़ल सुनदे ही नहीं...

नासिर : सच बुरा लगता है, झूठ लोग बार-बार सुनना चाहते हैं।

हमीद : वाह नासिर साहब, क्या बात कह दी।

आपके जुमले अश्आर से कम नहीं होते।

सिराज : नई जी नइ...शायरी-वायरी सब....बेकार है...

पहलवान : ***(सिराज से)*** छड न ए ये बेकार दियाँ गल्लां। ***(बड़बड़ाता है)*** पाकिस्तान विच कुफ्र फैल रिया है तो ए बैठे शायरी कर रहे ने।

अलीम : कैसा कुफ्र फैल रहा है?

पहलवान : (गुस्से में) अरे वो हिन्दू बुढ़िया, रोज़ रावी विच नहान जान्दी है, पूजा करदी है... सानू सबनू ठेंगा दिखादी है। ...ऐ कुफ्र नहीं फैला रिया तो और की हो रिया है?

नासिर : अगर इसे आप कुफ्र मानते हैं तो आपकी नज़र में ईमान का मतलब रोज़ रावी में न नहाना, पूजा न करना और किसी को अंगूठा न दिखाना होगा।

पहलवान : ***(बिगड़कर)*** क्या मतलब है त्वाडा।

नासिर : आपको समझाना किसके बस का काम है?

पहलवान : जनाब वो हिन्दू बुडी साडे घरां च जादी है, साडी औरतां, लड़कियाँ नाल मिलदी है, ओना नाल गल्ला करदी है, उना नूं अपने मज़हब दी गल्लां दसदी है।

नासिर : तो किसी और मज़हब की बातें सुनना कुफ्र है।

पहलवान : ***(बुरा मानते हुए)*** तो क्या ये चंगी गल है कि साडी बहू-बेटियाँ हिन्दू मज़हब दी गल्लां सिखण?

नासिर : किसी और मज़हब के बारे में मालूमात हासिल करना कुफ्र नहीं है।

पहलवान : बुरा तो है।

नासिर : नहीं, बुरा भी नहीं है...आपको पता ही

होगा कुरान में यहूदी और ईसाई मज़हब का ज़िक्र है।

पहलवान : ईसाई ते यहूदी मज़हबां की गल और हैं, हिन्दू मज़हब दल गल और है। फ़र्क़ है।

नासिर : क्या फ़र्क है?

पहलवान : **(घबरा कर बगलें झांकने लगता है)** ज...ज...जी...फ़र्क है...कुछ न कुछ तो फ़र्क है...

नासिर : तो बताइए ना...

(पहलवान कुछ कह नहीं पाता चुप हो जाता है।)

अनवार : अजी वो तो किसी से नहीं डरती।

नासिर : क्यों डरे वो किसी से? क्या उसने चोरी की है या डाका डला है, या किसी का क़त्ल किया है।

सिराज : लेकिन हम ये बर्दाश्त नहीं कर सकते।

नासिर : क्या बर्दाश्त नहीं कर सकते...किसी का न डरना आप बर्दाश्त नहीं कर सकते... यानी सब आपसे डरा करें?

पहलवान : अजी सौ दी सीधी गल्ल है, उसनूं भारत क्यों नहीं भेज दिता जान्दा।

नासिर : क्या आपने ठेका लिया है लोगों को इधर से उधर भेजने का? ये उसकी मर्ज़ी है...वो चाहे यहाँ रहे या भारत जाये।

पहलवान : ***(अपने चेलों से)*** चले आओ चलें...

(पहलवान गुस्से में नासिर को देखता है ओर खड़ा हो जाता है।)

नासिर : जाते-जाते एक सच सुनते जाओ पहलवान। (शेर पढ़ता है)

है यही ऐने वफ़ा दिल न किसी का दुखा

अपने भले के लिए सबका भला चाहिए।

(पहलवान तेज़ी से चला जाता

है और उसके साथी उसके साथ बाहर निकल जाते हैं।)

नासिर : यार अलीम एक बात बता।

अलीम : पूछिए नासिर साहब।

नासिर : तुम मुसलमान हो।

अलीम : हाँ, हूँ नासिर साहब।

नासिर : तुम क्यों मुसलमान हो?

अलीम : ***(सोचते हुए)*** ये तो कभी नहीं सोचा नासिर साहब।

नासिर : अरे भाई तो अभी सोच लो।

अलीम : अभी?

नासिर : हाँ हाँ अभी...देखो तुम क्याा इसलिए मुसलमान हो कि जब तुम समझदार हुए तो तुम्हारे सामने हर मज़हब की बातें रखी गयीं और कहा गया कि इसमें से जो मज़हब तुम्हें पसन्द आए, अच्छा लगे, उसे चुन लो?

अलीम : नहीं नासिर साहब...मैं तो दूसरे मज़हबों के बारे में कुछ नहीं जनाता।

नासिर : इसका मतलब है, तुम्हारा जो मज़हब है उसमें तुम्हारा कोई दख़ल नहीं है...तुम्हारे माँ-बाप का जो मज़हब था वही तुम्हारा है।

अलीम : हाँ जी बात तो ठीक है।

नासिर : तो यार जिस बात में तुम्हारा कोई दख़ल नहीं है...उसके लिए ख़ून बहाना कहाँ तक जायज़ है?

हमीद : ख़ून बहाना तो किसी तरह भी जायज़ नहीं है, नासिर साहब।

नासिर : **(ऊँची आवाज में)** अरे तो समझाओ न इन पहलवानों को...लाओ यार एक प्याली कड़क चाय और लाओ...साले ने मूड ख़राब कर दिया।

(अंतराल गायन)

साज़े हस्ती की सदा ग़ौर से सुन

क्यों है ये शोर बपा ग़ौर से सुन

इसी मंज़िल में है सब हिज्रो-विसाल

रहरवे आब्ला पा ग़ौर से सुन

इसी गोशे में हैं सब दैर-ओ-हरम

दिल सनम है के ख़ुदा ग़ौर से सुन

काबा सुनसान है क्यों ए वायज़

कान हाथों से उठा ग़ौर से सुन

दृश्य : दस

(हमीदा बेगम के घर में पड़ोस की औरतों की महफ़िल जमी है। फ़र्श पर रतन की माँ बैठी कुछ काढ़ रही है। सामने तन्नो बैठी है। तन्नो के बराबर एक 18-19 साल की लड़की साजिदा बैठी है। सामने हमीदा बेगम बैठी है। उनके सामने पानदान खुला हुआ है। हमीदा बेगम के बराबर बेगम हिदायत हुसैन बैठी हैं।)

हमीदा बेगम : (***बेगम हिदायत हुसैन से)*** बहन, पान तो यहाँ आँख से लगाने के लिए नहीं मिलता...और पान के बग़ैर कत्थे चूने का मज़ा ही नहीं आता।

बेगम हिदायत : ऐ, यहाँ पान होता क्यों नहीं?

रतन की माँ : बेटा पान तो उत्थोंई आन्दा सी...जद तों बंटवारा होया तां, तो मोया पान वी न्यामत हो गया।

हमीदा बेगम : माई ये शहर हमारी समझ में तो आया नहीं।

रतन की माँ : पुत्तर इस तरहाँ न कह, लाहौर ज्या ते कोई शहर ही नहीं है दुनियाँ च।

हमीदा बेगम : लेकिन लखनऊ में जो बात है...वो लाहौर में कहाँ...

रतन की

माँ : पुत्तर अपना वतन ते अपना ई होंदा है उसदा कोई बदल नहीं।

तन्नो : दादी आपने हमें उलटे फंदे जो सिखये थे...उसमें धागे को दो बार घुमाते हैं कि तीन बार।

रतन की माँ : देख बेटी...फिर देख लै...इस तरह पैले फंदा पा...फिर इस तरह घुमा के इदरन तरहाँ ले जा...फिर दो फंदे और पा दे।

साजिदा : दादी आपकी पंजाबी हमारी समझ में नहीं आती।

रतन की माँ : बेटी होंण मैं कोई दूसरी जबान तां सिक्खण तो रई। हाँ मेरा पुत्तर रतन ज़रूर उर्दू जाणदा सी।

(आँखों के किनारे पोंछने लगती है।)

हमीदा बेगम : माई हो सकता है आपका बेटा और बीवी बच्चे ख़ैरियत से भारत में हों...

रतन की माँ : बेटी इन्ना बखत गुजर गया...अगर ओ जिंदा होंदे तां ज़रूर मेरी कोई खबर लेंदे।

बेगम हिदायत : माई ऐसा भी तो हो सकता है कि उन लोगों ने सोचा हो कि आप अब लाहौर में न होंगी... ***(हमीदा बेगम से)*** बहन आपने सुना सिराज साहब के भाई जिंदा हैं और करांची में रह रहे हैं...सिराज साहब वग़ैरह बेचारे के लिए रो-धो कर बैठ गये थे।

हमीदा बेगम : हाँ, अल्लाह की रहमत से सब कुछ हो सकता है।

रतन की माँ : रेडियो तो वी कई बार ऐलान कराया है लेकिन रतन दा किधरी कोई पता नहीं चलाया।

बेगम हिदायत : अल्लाह पर भरोसा रखो माई...वही सबकी निगेहदाश्त करने वाला है।

रतन की माँ : ए ते है... ***(आँखें पोंछते हुए)*** बेटी आ गये तन्नू फंदे पाणें।

तन्नो : हाँ माई ये देखिए...

रतन की माँ : हाँ शाबाश...तू ते इतनी जल्दी सिख गई।

बेगम हिदायत : अच्छा तो अब इजाज़त दीजिए...मैं चलती हूँ।

रतन की माँ : बेटी त्वानूं जद वी रजाई तलाई च तागे पाणें होंण तां मैन्नू बुला लेंणां। मैं ओ वी करा दवांगी।

बेगम हिदायत : अच्छा माई शुक्रिया...मैं ज़रूर आपको तकलीफ़ दूंगी...और खांसी की जो दवा आपने बना दी थी...उससे बेटी को बड़ा फ़ायदा हुआ है। अब ख़त्म हो गई है।

रतन की माँ : तां के होया फिर बणा दवांगी...इस विच की है तू मुलैठी, काली मिर्ज़, शहद और सोंठ मंगा के रख लई बस।

हमीदा बेगम : तो बहन आती रहा कीजिए।

बेगम हिदायत : हाँ, ज़रूर...और आप भी आइए...माई के साथ।

हमीदा बेगम : ***(हँसकर)*** माई के साथ ही मैं घर से निकलती हूँ लेकिन माई जैसा ख़िदमत

का जज़्बा हाँ से लाऊँ...ये तो सुबह से निक्लती हैं तो शाम ही को लौटती हैं।

रतन की माँ : बेटी जद तक इस शरीर विच ताकत है तद तक ही सब कुछ है नहीं तों एक दिन त्वाडे लोकां ते बोझ बणना ही है।

हमीदा बेगम : माई हम पर आप कभी बोझ नहीं होंगी...हम ख़ुशी-ख़ुशी आपकी ख़िदमत करेंगे।

बेगम हिदायत : अच्छा खुदा हाफ़िज़।

(बेगम हिदायत चली जाती है।)

रतन की माँ : अजे मनूं आफ़ताब साहब दे घर जाणा हैं...उन्हों दे वड्डे मुंडे नूं माता निकल आई है ना...वो बड़ी परेशान है। एक मुंडा बीमार, दूसरा घर दे सारे कामकाज करने होन। मैं मुंडे कौल बैठांगी तां ओ बेचारी घर दा चूल्हा चौका करेगी।

(सिकन्दर मिर्ज़ा आते हैं।)

सिक-न्दर मिर्ज़ा : आदाब अर्ज़ है माई।

रतन की माँ : जीदे रह पुत्तर।

सिक-न्दर मिर्ज़ा : रहते एक ही घर में हैं लेकिन आपसे मुलाक़ात इस तरह होती है जैसे अलग-अलग मोहल्लों में रहते हों।

हमीदा बेगम : माई घर में रहती ही कहाँ हैं। तड़के रावी में नहाने चली जाती हैं। सुबह अक़ील साहब के यहाँ बड़ियाँ डाल रही हैं, तो कभी नफ़ीसा को अस्पताल ले जा

रही हैं, बेगम आफ़ताब के लड़के की तीमारदारी कर रही हैं तो कभी सकीना को आचार-डालना सिखा रही हैं...रात में दस बजे लौटती हैं। हम लोगों से मुलाक़ात हो तो कैसे हो...

सिकन्दर मिर्ज़ा : जज़ाकल्लाह!

हमीदा बेगम : मोहल्ले के बच्चे की ज़बान पर माई का नाम रहता है...हर मर्ज़ की दवा हैं माई।

रतन की माँ : बेटी कल्ली पई-पई करांवी की...सब दे नाल ज़रा दिल वी उरे-परे हो जांदा है... हाथ-पैर वी हिलदे रहदें ने। मन्नू होण चाहिदा की है...अच्छा बेटे तेरे कल्लों एक गल पूछणी सी।

सिकन्दर मिर्ज़ा : हुक्म दीजिए माई।

रतन की माँ : बेटा दीवाली आ रही है...हमेशा दी तरहाँ इस साल वी मैं दीवे जलाणा और पूजा करना...चाँदी हाँ। मैं तनूं कहणा चाहदी सी कि तन्नूं कोई एतराज़ ते नई होएगा।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ये भी कोई पूछने की बात है? खुशी से वो सब कुछ कीजिए जो आप करती थीं। हमें इसमें कोई एतराज़ नहीं है... क्यों बेगम।

हमीदा बेगम : बेशक...

(अंतराल गायन)

कहीं उजड़ी-उजड़ी मन्ज़िलनें, कहीं टूटे फूटे से बामो-दर

से वही दयार है दोस्तों जहाँ लोग फिरते थे रात भर

मैं भटकता फिरता हूँ देर से यूँ ही शहर-शहर नगर-नगर

कहाँ खो गया मेरा क़ाफ़ला, कहाँ रह गए मेरे हम सफ़र

मेरी बेकसी का न ग़म करो मगर अपना फ़ायदा सोच लो

तुम्हें जिसकी छांव अज़ीज़ है, मैं उसी दरख़्त का हूँ समर।

दृश्य : ग्यारह

(रतन की माँ हवेली में चिराग़ां कर रही हैं। तन्नो और जावेद उसकी मदद कर रहे हैं। हमीदा बेगम एक कोने में बैठी चिराग़ां देख रही है। जब सब तरफ़ चिरागां जल चुकते हैं तो माई दाहिनी तरफ़ पूजा करने की जगह पर बैठ जाती है। तन्नो और जावेद अपनी माँ के पास आकर बैठ जाते हैं। रतन की माँ पूजा करना शुरू करती है।)

तन्नो : अम्माँ ये सब हुआ क्यों?

**हमीदाब
बेगम** : क्या बेटी?

तन्नो : यही हिन्दोस्तान, पाकिस्तान?

**हमीदा
बेगम** : बेटी, मुझे क्या मालूम....

तन्नो : तो हम लोग पाकिस्तान क्यों आ गए।

**हमीदा
बेगम** : मैं क्या जानूं बेटी?

तन्नो : अम्माँ, अगर हम लोग और माई एक ही घर में रह सकते हैं तो हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमान क्यों नहीं रह सकते थे।

**हमीदा
बेगम** : रह सकते क्या...सदियों से रहते आये थे।

तन्नो : फिर पाकिस्तान क्यों बना?

**हमीदा
बेगम** : तुम अपने अब्बा से पूछना।

(पूजा पूरी करने के बाद माई उठती हैं और थाली में रखी मिठाई सबके आगे बढ़ाती हैं)

हमीदा

बेगम : दीवाली मुबारक हो माइ।

रतन की माँ : त्वानूं सबनूं वी मुबारक होवे। ***(कुछ ठहरकर कांपती आवाज़ में)*** खबरे मेरा रतन किथरी दीवाली मना ही रया होवे।

हमीदा बेगम : माई त्योहार के दिन आँसू ने निकालो... अल्लाह ने चाहा तो ज़रूर दिल्ली में होगा और जल्दी तुमसे मिलेगा।

(रतन की माँ अपने आँसू पोंछ लेती हैं।)

(दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ सुनाई देती है।)

तन्नो : कौन है?

नासिर : मैं हूँ नासिर काज़मी...मैं हमीद साहब के साथ माई को दीवाली की मुबारकाद देने हाज़िर हुआ हूँ।

(तन्नो और हमीदा बेगम अन्दर चले जाते हैं। मंच पर केवल माई रह जाती है)

रतन की माँ : आओ...तुसी अन्दर आओ।

नासिर : आदाब अर्ज़ है माई।

हमीद : आदाब अर्ज़ है माई।

रतन की माँ : जींदे रहो...लम्बी उम्र पाओ...बैठो...

नासिर : माई लम्बी उम्र की दुआ देने के साथ-साथ एक दुआ और भी दो।

रतन की माँ : की दुआ पुत्तर?

नासिर : तुम्हारा जैसा किरदार भी हो हमारा...

रतन की माँ : हट की मज़ाक करदा है...लै मिठाई खा...

(दोनों मिठाई खाते हैं)

रतन की

माँ : मैं ज़्यादा धूमधूम से दिवाली नहीं मनाई...बस ऐवें ही...

हमीद : क्यों माई धुमधाम से क्यों नहीं मनाई?

रतन की माँ : सोच्या पाकिस्तान बन गया है...पता नहीं...

नासिर : चाहे कितने ही 'आस्तां' क्यों न बन जाएँ...वहाँ रहेंगे तो हमारे आपके जैसे इंसान ही?...और माई जहाँ इंसान होंगे वहाँ रिश्ते होंगे...जज़्बात होंगे...त्योहार होंगे...सरसों के खेतों की तलाश में सरगर्दां दीवाने होंगे...क्यों हमीद भाई?

हमीद : अब मैं आप जैसा शायर तो हूँ नहीं। हाँ अगर आज माई ने दीवाली न मनाई होती तो लगता कि हमारे वजूद का एक टुकड़ा कट गया है।

रतन की माँ : तुसी लोकों दे सहारे मैं इत्थे हाँ पुत्तर हमीद।

हमीद : माई हम आपके सहारे यहाँ हैं...गुज़रे हुए वक़्त की जो डोर उससे छूटी जा रही है न? उसे हम आपके हवाले से थामे हुए हैं।

(सिकन्दर मिर्ज़ा अन्दर आते हैं)

सिकन्दर मिर्ज़ा : सलामअलैकुम...माई आदाब।...

रतन की माँ : जींदे रहो।

हमीद और नासिर : वालेकुम सलाम।

सिकन्दर मिर्ज़ा : वाह खूब मुलाकात हुई।

नासिर : बिछड़ गए थे जो तूफां की रात में 'नासिर'

सुना है उनमें से कुछ आ मिले किनारे पर।

सिकन्दर मिर्ज़ा : काश हम भी शायर होते!

नासिर : आप शायर हैं...माई शायर हैं...और

रतन की माँ : ***(बात काटकर)*** लै पुत्तर मिठाई खा...

(सिकन्दर मिर्ज़ा मिठाई खाते हैं। बाहर से ज़ोर-ज़ोर दरवाज़े की कुंडी खटखटाये जाने की आवाज़ आती है और कोई गुस्से में चिल्लाता है।)

आवाज़ : सिकन्दर मिर्ज़ा...सिकन्दर मिर्ज़ा....

सिकन्दर मिर्ज़ा : कौन साहब हैं अन्दर आइए।

(पहलवान और उसके चमचे धड़धड़ाते हुए अन्दर आ जाते हैं। माई उन्हें देखकर अन्दर चली जाती है।)

पहलवान : ***(अनवार से)*** देखा तुमने ये क्या हो रिया है...खुदा की कसम खून खौल रिया है।

नासिर : क्या बात है पहलवान साहब...बहुत गुस्से में नज़र आ रहे हैं।

पहलवान : नज़र नहीं आंदा, हूँ गुस्से में...

नासिर : अमाँ तो पाकिस्तान के वज़ीरे आज़म को एक खत लिख मारिए।

पहलवान : क्यों मज़ाक करते हैं नासिर साहब।

नासिर : मज़ाक कहाँ भाई...हम शायर तो जब बहुत गुस्से में आते हैं, यही करते हैं।

पहलवान : कसम खुदा दी ये तो अंधेर है।

नासिर : भाई हुआ क्या?

पहलवान : अरे जनाब उस कम्बख्त ने हवेली में चिरागां कीता. पूजा कीती, दीवाली मनाई।

नासिर : अच्छा...अच्छा आप माई के बारे में कह रहे हैं?

पहलवान : तुसी उस हिन्दू काफिरा को माई कहते हो?

नासिर : जनाब मैं तो दिन को दिन रात को रात ही कहूँगा...आप जिसको जो जी चाहे कहें।

(पहलवान खूंखार नज़रों से घूरता है।)

पहलवान : ***(चमचों से)*** मेरी समझ में नहीं आता मिर्ज़ा साहब ने उसनू चिरागां करन दी इजाजत कैसे दे दित्ती?

सिकन्दर मिर्ज़ा : इजाजत? आप भी कैसी बातें कर रहे हैं पहलवान...भाई...हवेली उसी की है... उसने मुझे यहाँ रहने की इजाजत दे रखी है।

पहलवान : उसका अब पाकिस्तान में कुछ नहीं है। मैं ता हैरान हाँ कि इनता ग़ैर-इस्लामी काम होया, ते लोगों के कान ते हूँ तक नहीं रेंगी।

नासिर : भई आप माई के दीवाली मनाने को ग़ैर इस्लामी जो कह रहे हैं, वो अपने हिसाब से कह रहे हैं। वो हिन्दू हैं उन्हें पूरा हक है अपने मजहब पर चलने का।

पहलवान : त्वाडे वरगे सब हो जाएँ तो इस्लामी हुकूमत की ऐसी तैसी हो जाए...जनाब अज ओ पूजा कर रही है...कल मंदिर

बनाएगी, परसों लोगां नू हिन्दू मजहब दी तालीम देवेगी।

नासिर : तो?

पहलवान : मतलब कुछ हुआ ही नहीं?

नासिर : आपके कहने का मतलब है कि जैसे ही उसने हिन्दू मजहब की तालीम देना शुरू की वैसे ही लोग पटापट हिन्दू होने लगेंगे...माफ कीजिएगा अगर ऐसा हो सकता है तो हो ही जाने दीजिए।

पहलवान : ये सब छोड़ इस हवेली विच दीवाली मनाई गयी है कि नहीं?

सिकन्दर मिर्ज़ा : जी हाँ मनाई गयी है।

पहलवान : पूजा वी हुई?

सिकन्दर मिर्ज़ा : जी हाँ- लेकिन बात क्या है।

पहलवान : ए सब इसी वजह तों हुआ कि तुसी उस काफिरा नूं पनाह दे रखी है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जनाब ज़रा जबा संभल कर बातचीत कीजिए...एक तो मैं आपके किसी सवाल का जवाब देने के लिए पाबँद नहीं हूँ, दूसरे आपको मुझसे सवाल करने का हक़ क्या है।

पहलवान : तुसी गैर इस्लामी काम कराते हो और हम बैठे देखते रहे, ये नहीं हो सकदा।

अनवार : बिल्कुल नहीं हो सकता।

पहलवान : और हुण असी चुप वी नहीं रह सकदे।

नासिर : ख़ैर, चुप तो आप कभी नहीं रहे।

(पहलवान चिढ़ जाता है और बाहर निकल जाता है।)

(अंतराल गायन)

साज हस्ती की सदा ग़ौर से सुन

क्यों है ये शेर बपा ग़ौर से सुने

चढ़ते सूरज की अदा को पहचान

डूबते दिन की निदा ग़ौर से सुन

इसी मंज़िल में हैं सब हिज्रो-विसाल

रहरवे आब्ला पा ग़ौर से सुन

इसी गोशे में है सब दैरो हरम

दिल सनम है के खुदा ग़ौर से सुन

काबा सुनसान है क्यों ए वायज़

हाथ कानों से उठा ग़ौर से सुन

दृश्य : बारह

(मौलाना मस्जिद में बैठे तस्बीह पढ़ रहे थे। पहलवान बहुत गुस्से में अन्दर आता है। उसके पीछे अनवान और सिराज हैं। उनके भी पीछे नासिर काज़मी, हमीद हुसैन, सिकन्दर मिर्ज़ा आते हैं।)

पहलवान : ***(गुस्से में चीख़ते हुए)*** देखो मौलाना इत्थे की हो रया है?

(मौलाना कुछ नहीं बोलते। कुछ क्षण खामोश रहते हैं। पहलवान गुस्से में भरा हुआ खड़ा है।)

मौलाना : ***(ठंडी आवाज़ में)*** पुत्तर गुस्सा अकल दा दुश्मन है...जो बात तूने कहनी है... आराम नाल कह दे।

पहलवान : ***(गुस्से में)*** हुण मैं की दस्सां... सिकन्दर मिर्ज़ा साहब दे घर पूजा होई। बुतपरस्ती होई है...ये कुफ्र नहीं तो की है।

मौलवी : ***(सिकन्दर मिर्ज़ा से)*** बात क्या है मिर्ज़ा साहब?

पहलवान : अजी ये क्या बतायेंगे...मैं बताता हूं।

मौलवी : भाई बात तो इनके घर की है न? ये नहीं बतायेंगे और आप बतायेंगे, ये कैसे हो सकता।

पहलवान : जवाब ये छुपायेंगे...ये पर्दा पाणगे... और मैं हक़ीक़त को खोलकर सामने रख दूंगा।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ठीक है, आप हक़ीक़त बयान कीजिए... मैं चुप हूँ।

पहलवान : हुज़ूर...इनके घर में बुतपरस्ती होंदी है, कल खुलेआम पूजा होई है...ओ सब किया गया, उसे क्या कहते हैं...हवन वग़ैरह...और फिर चिराग़ां कीता गया... क्योंकि कल दीवाली थी। और मिठाई बनाकर तक़सीम की गयी।

मौलाना : अब त्वाडी इजाजत है, है मैं मिर्ज़ा साहब से भी पूछूं।

(पहलवान कुछ नहीं बोलता।)

मौलाना : मिर्ज़ा साहब क्या मामला है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जनाब आपको मालूम ही है कि मेरी हवेली की ऊपरी मंज़िल में माई रहती हैं। माई उस शख़्स रतन लाल की माँ है जिसकी हवेली थी। उसने मुझसे कहा कि मेरा त्यौहार आ रहा है मुझे मनाने की इजाज़त दे दो...भला मैं किसी को उसका त्यौहार मनाने से क्यों रोकने लगा...मैंने उससे कहा...ज़रूर मनाइए... उस बेचारी ने त्योहार मनाया...क़िस्सा दरअसल यही है।

पहलवान : घंटियाँ दी आवाजां मैंने अपने कानों से सुनी हैं...

मौलाना : ठहरो भाई...तो बात दरअसल ये है कि हिन्दू बुढ़िया ने इबादत की और...

पहलवान : इबादत? तुसी उसदी पूजा घंटियाँ वग़ैरा बजाण नूं इबादत कह रहे हो?

मौलाना : ***(हँसकर)*** तो उसके लिए कोई

मुनासिब लफ़्ज आप ही बता दें।

पहलवान : पूजा।

मौलाना : जी हाँ, पूजा का मतलब ही इबादत है... तो उसने इबादत की।

(कुछ क्षण ख़ामोशी।)

मौलाना : तो क्या हुआ...सबको अपनी इबादत करने और अपने ख़ुदाओं को याद करने का हक़ है।

पहलवान : ये कैसे मौलाना साहब?

मौलाना : भई हदीस शरीफ़ है कि तुम दूसरों के खुदाओं को बुरा न कहो, ताकि वो तुम्हारे खुदा को बुरा न कहें, तुम दूसरों के मज़हब को बुरा न कहो, ताकि वो तुम्हारे मज़हब को बुरा न कहें।

(पहलवान का मुँह लटक जाता है। फिर अचानक उत्साह में आ जता है।)

पहलवान : फ़र्ज कीजिए कल बुढ़िया यहाँ मंदिर बना ले?

मौलाना : मंदिरों को बनने न देना...या मंदिरों को तोड़ना इस्लाम नहीं है पुत्तर।

पहलवान : ***(गुस्से में)*** अच्छा तां इस्लाम की है?

मौलाना : अपने आपको अल्लाह के हवाले कर देना इस्लाम है।

पहलवान : ओ तां सब ठीक है मौलवी साहब... लेकिन...ओ हिन्दू औरत....

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(बात काट करी)*** हुजूर वो हिन्दू औरत बेवा है।

मौलाना : बेवा का दर्जा तो हमारे मज़हब में बहुत बुलंद है...हदीस है कि बेवा और ग़रीब

के लिए दौड़-धूप करने वाला दिन भर रोज़ा और रात भर नमाज़ पढ़ने वाले के बराबर है।

(पहलवान का मुँह भी लटक जाता है, लेकिन फिर सिर उठाता है।)

पहलवान : बेवा चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान?

मौलाना : पुत्तर, इस्लाम ने बहुत से हक़ ऐसे दिये हैं जो तमाम इंसानों के लिए हैं...उसमें मज़हब, रंग, नस्ल और ज़ात का कोई फ़र्क़ नहीं किया गया।

सिकन्दर मिर्ज़ा : मौलाना वो ग़मज़दा, परेशान हाल है, हम सब की इस क़दर मदद करती है कि कहना मुहाल है।

मौलवी : पुत्तर, अल्लाह उस शख़्स से बहुत ख़ुश होता है जो किसी ग़मज़दा के काम आये या किसी मज़लूम की मदद करे।

नासिर : (शेर पढ़ता है) है यही ऐने वफ़ा दिल न किसी का दुखा अपने भले के लिए सबका भला चाहिए।

मौलाना : बेशक।

सिकन्दर मिर्ज़ा : हुज़ूर माई में ख़िदमत का बड़ा जज़्बा है।

मौलाना : पुत्तर, ख़िदमत से तो खुदा खुश होता है...खिदमत तो इंसान का ज़ेवर है... ख़िदमत के बग़ैर तो इंसान जानवर के बराबर है...मैंनूं बड़ी खुशी हुई ए जान के...

पहलवान : ***(गुस्से में)*** मुल्ला...ए सब तां ठीक सी...पर ये बताओ...तुसी हिन्दू औरत को हम मुसलमान बँदों पर तरजीह दे रहे हो?

मौलाना : ***(हँसकर)*** पुत्तर हम तो उसके ***(आसमान की तरफ उँगली उठाकर)*** हुक्म दे बँदे हैं...कुरान पाक में लिखा है...

पहलवान : **(बहुत गुस्से में उत्तेजित होकर)** बस जी...बस...इतना इस्लाम हम भी जानदे हाँ कि मुसलमान हिन्दू से अच्छा होंदा है...जो ऐसा नहीं मानता वो मुसलमानों का दुश्मन है...और मुल्ला...असी तो त्वाडी सात पुश्तों को जादने हाँ...ये बाहर से आने वाले क्या जाणे...तुम्हारा बाप...दूसरों की बकरियाँ चराया करांदा सी...बकरियाँ...कपड़े लोग दे देंदे सी तो पहनता था...और त्वाहनु मोहल्ले वालों ने चंदा करके पढ़वाया सी...

(पहलवान की उत्तेजना बढ़ती जाती है और सभी लोग उसे आश्चर्य से देखते हैं। पहलवान धड़ाधड़ बोलता जाता है।)

त्वाडे बाप के घर के घर दो-दो दिन चूल्हा नहीं जलदा सी...

मौलाना : अल्लाह तुझे अक़्ल दे...पहलवान...

अन्तराल

तू असीरे बज़्म है हम सुखन तुझे ज़ौके नाल-ए-नै नहीं

तेरा दिल गुदाज़ हो किस तरह ये तेरे मिज़ाज की लै नहीं

तेरा हर कमाल है ज़ाहिरी, तेरा हर ख़्याल है सरसरी

कोई दिल की बात करूँ तो क्या, तेरे

दिल में आग तो है नहीं

जिसे सुन के रुह महक उठे, जिसे पी के दर्द चहक उठे

तेरे साज में वो सदा नहीं, तेरे मैकदे में वो मैं नहीं

यही शेर है मेरी सल्तनत, इसी फन में है मुझे आफ़ियत

मेरे कास-ए-शबो रोज़ में, तेरे काम को कोई शय नहीं।

दृश्य : तेरह

(अलीम के चाय का ढाबा है। रात का वक़्त है। वहाँ हमीद अलीमा के साथ बैठे हैं। अलीमा बंगीठी सुलगाता है।)

अलीम : ***(धुएं से परेशान होकर)*** लगता है साले सूखे कोयले भी सब उधर ही चले गए...

हमीद : वाह अलीमा वाह तुमने कोयलों तक को तक़्सीम कर दिया।

अलीम : अब ज़माना ही ऐसा आ गया है हमीद मियाँ...वो नासिर साहब का मिसरा है न, 'फूल ख़ुशबू से जुदा है अब के'

हमीद : अरे हाँ ये बताओ नासिर साहब को देखा? आज काफ़ी हाउस में भी नहीं आए।

अलीम : मियाँ नासिर साहब दिन में मुझे दिखाई नहीं पड़ते...हाँ अब उनके आने का वक़्त है।

(नासिर आते दिखाई देते हैं)

अलीम : देखिए नासिर साहब आ रहे हैं...

हमीद : अरे जनाब सलामअलैकुम....भाई आज दिन भर आप कहाँ रहे?

नासिर : ***(संजीदगी से)*** पत्तों से मुलाक़ात करने चला गया था।

हमीद : ***(हैरत से)*** पत्तों से।

नासिर : जी हाँ...पत्तों से मुलाक़ात।

हमीद : पत्तों से मुलाक़ात कैसे होती है नासिर साहब?

नासिर : ...आजकल पतझड़ है न...पेड़ों के पीले पत्तों को झड़ता देखता हूँ तो उदास हो जाता हूँ...उतनी और उस तरह की उदासी

कभी नहीं तारी होती मुझपर। इसलिए पतझड़ में मैं पत्तों के ग़म में शामिल होने चला जाता हूँ।

हिदायत : मुझे भी एक चीज़ की तलाश है...मैं जब से लाहौर आया हूँ...ढूंढ रहा हूँ... आज तक नहीं मिली।

नासिर : क्या चीज़?

हमीद : भई हमारी तरफ़ एक चिड़िया हुआ करती थी...श्यामा चिड़िया...वो इधर दिखाई नहीं देती।

नासिर : शाम चिड़ी।

हिदायत : हाँ...हाँ।

नासिर : शाम चिड़ी मैं आपको दिखाऊँगा... मैंने उसे यहाँ तलाश किया है...उसकी तलाश मेरे लिए तरक़्क़ी पसन्द अदब और इस्लामी अदब से बड़ा मसला था... जब मैं यहाँ शुरु-शुरु में आया तो उन सब चीज़ों की तलाश थी जिन्हें दिलो-जान से चाहता था...सरसों के खेतों से भी मुझे इश्क़ है...तो भाई मैंने लाहौर आते ही कई लोगों से पूछा था कि क्या सरसों यहाँ भी वैसी ही फूलती है जैसी हिन्दोस्तान में फूलती थी। मैंने ये भी पूछा था कि यहाँ सावन की झड़ी लगती है...बरसात के दिनों की शामें क्या मोर की झंकार से गूंजती हैं? बसंत में आसमान का रंग कैसा होता है?

हमीद : भई तुम शायरों की बातें हम लोग क्या समझेंगे...हाँ सुनने में अच्छी बहुत लगती हैं।

नासिर : दरअसल एक-एक पत्ती मेरे लिए शहर है, फूल भी शहर है और सबसे बड़ा शहर है दिल। उसेस बड़ा कोई शहर क्या होगा...बाक़ी जो शहर हैं सब उसकी गलियाँ हैं।

हमीद : मैं मानता हूँ नासिर, शायर और दूसरे लोगों में बड़ा फ़र्क़ है...

नासिर : ***(बात काटकर)*** नहीं-नहीं ये बात नहीं है, हर जगह, ज़िन्दगी के हर शोबे में शायर हैं...ये ज़रूरी नहीं कि वो शायरी कर रहे हों...वो तख़लीक़ी लोग हैं। छोटे-मोटे मज़दूर, दफ़्तरों के क्लर्क-अपने काम से काम रखने वाले ईमानदार लोग...ट्रेन के इंजन का ड्राइवर जो इतने हज़ार लोगों को लाहौर से करांची और करांची से लाहौर ले जाता है। मुझे ये आदमी बहुत पसन्द है...और एक वो आदमी जो रेलवे के फाटक बँद करता है। आपको पता है अगर वो फाटक खोल दे, जब गाड़ी आ रही हो तो क्या क़्यामत आये? बस शयर का भी यही काम है कि किस वक़्त फाटक बँद करना है, किस वक़्त खोलना है।

(हमीद कुछ फ़ासले पर जाती रतन की माँ को देखता है।)

हमीद : अरे ये इस वक़्त यहाँ कैसे?

नासिर : ये तो माई हैं।

(दोनों माई के पास पहुँचते हैं।)

नासिर : नमस्ते माई...आप?

रतन की माँ : जीदें रहो...जींदे रहो।

नासिर : खैरियत माई? इस वक़्त ये सामान लिए आप कहाँ जा रही हैं।

रतन की माँ : बेटा मैं दिल्ली जाणा चाहंदी हाँ।

नासिर : ***(उछल पड़ते हैं)*** नहीं माई, नहीं...ये कैसे हो सकता है..ये नामुमकिन है।

रतन की माँ : बस पुत्तर बहुत रह लई लाहौरच... हुण लगदा है इत्थे दा दाणा पाणी नहीं रया।

हमीद : लेकिन क्यों माई?

नासिर : क्या कोई तकलीफ़ है।

रतन की

माँ : पुत्तर तकलीफ़ उसनूं होंदी है जो तकलीफ़ नूं तकलीफ़ समझदा है...मैन्नू कोई तकलीफ़ नहीं है?

नासिर : तब क्यों जाना चाहती हैं? आपको पूरा मोहल्ला माई कहता है, लोग आपके रास्ते में आँखें बिछाते हैं, हम सबको आप पर नाज़ है...

रतन की माँ : अरे सब त्वाडे प्यार दा सदका है।

नासिर : तो हमारा प्यार छोड़ कर आप क्यों जाना चाहती हैं।

रतन की माँ : पुत्सा, तुसी लोकां ने मैन्नू वो प्यार और इज़्ज़त देती है जो अपणे भी नहीं देंदे।

नासिर : माई जो जिसका अहेल होता है, वो उसे मिलता है, आपने हमें इतना दिया है कि हम बता ही नहीं सकते।

रतन की माँ : प्यार ही मैन्नू लाहौर छड्डन ते मजबूर कर रया है।

हमीद : बात है क्या माई।

रतन की माँ : मेरा लाहौर च रहणा कुछ लोगां नूं पसन्द नहीं है, मिर्ज़ा साहब नूं धमकियाँ दित्ती जा रइयाँ ने कि ओ मैन्नू अपणे घर तों कड्ड देण...राह जांदें उनाते फिकरे कसे जांदे ने, उन्हों दी कुड़ी तन्नो और मुंडे जावेद दा लोग नाक च दम किते होए ने...लेकिन मिर्ज़ा साहब किस वी सूरत च नई चाहदें कि मैं जांवा।

हमीद : तब आप क्यों जाना चाहती हैं माई।

रतन की माँ : मैं इत्थे रवांगी ते मिर्ज़ा साहब...

नासिर : माई मिर्ज़ा साहब का कोई बाल बांका नहीं कर सकता...हम सब उनके साथ हैं।

रतन की माँ : पुत्तर, मन्नू त्वाडे सबते माण है, लेकिन त्वानूं किसी झमेले च फसांण तो अच्छा

है कि मैं खुद ही चली जांवां...तुसी मैनू दिल्ली जाण देवो...मेरे कोल रुपया पैसा है, ज़ेवर हैं, मैं उत्थे दो वक़्त दी रोटी खा लवांगी ते रइ जवांगी।

नासिर : ***(सख़्त लहजे में)*** ये हरगिज़ नहीं हो सकता...ये नामुमकिन है...कभी बेटे भी अपनी माँ को पड़ा रहने के लिए छोड़ते हैं?

रतन की माँ : मेरा कहणा मन्नो पुत्तर, मैं त्वानूं दुआएँ दवांगी।

नासिर : ***(दर्दनाक लहजे में)*** माई लाहौर छोड़कर मत जाओ...तुम्हें लाहौर कहीं और न मिलेगा...उसी तरह जैसे मुझे अम्बाला कहीं और नहीं मिला... हिदायत भाई को लखनऊ कहीं नहीं मिला...

(रतन की माँ आँसू पोंछने लगती है।)

हामिद : तुम हमारी माँ हो...हमसे जो कहोगी करेंगे...लेकिन ये मत कहो कि तुम हमारी माँ नहीं रहना चाहतीं...

रतन की माँ : फिर मैं की करां, दस्स।

नासिर : तुम वापिस चलो, दो-चार बदमाश कुछ नहीं कर सकते।

रतन की माँ : पुत्तर, मैं तां अपनी अखीं ओ सब देख्या है, उस वक्त वी सब ऐही कह दें सन कि दो चार बदमाश कुछ नहीं कर सकदे... ओ कहदें हन पूरे लाहौर च मैं ही कल्ली हिन्दू हाँ...मेरे एत्थों जाणतों ए शहर पाक हो जावेगा।

नासिर : तुम अगर यहाँ न रहीं तो हम सब नंगे हो जायेंगे माई...नंगा आदमी नंगा होता है, न हिन्दू होता है और न मुसलमान...

(हिदायत माई का बक्सा उठा लेते हैं।)

(अंतराल गायन)

फूल ख़ुशबू से जुदा है अब के

यारों ये कैसी हवा है अब के

दोस्त बिछड़े हैं कई बार मगर

ये नया दाग़ खिला है अब के

पत्तियाँ रोती हैं सर पीटती हैं

क़त्ले गुल आम हुआ है अब के

क्या सुनें शोरे बहारां 'नासिर'

हमने कुछ और सुना है अब के

दृश्य : चौदह

(रतन की माँ बैठी है। उसके पास वह बक्सा रखा है। जो पिछले दृश्य में था। सामने हमीदा बेगम, तन्नो और जावेद बैठे हैं। मिर्ज़ा साहब कुछ फ़ासले पर बैठे हैं।)

हमीदा बेगम : हरगिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं, हरगिज़ नहीं...माई ये ख़्याल आपके दिमाग़ में आया कैसे? नासिर साहब वग़ैरा ने न देख लिया तो ग़ज़ब ही हो जाता...

तन्नो : क्या हम लोगों से कोई ग़लती हो गयी माई।

रतन की माँ : बेटी तू वी कमाल कर दी है, अपणे बच्चयाँ तो वी भला कोई गलती होंदी है...मैं तेरी दादी हाँ अगर तेरे कोलों कोई गलती होंदी तो मैं तन्नो डांट दी...दो-चार चपेड़ा मार सकदी सी। मन्नू कोण रोक सकदा सी।

सिकन्दर मिर्ज़ा : बेशक ये आपकी पोती है आपका इस पर पूरा हक़ है। लेकिन ये तो मैं सोच भी नहीं सकता था कि आप अकेली दिल्ली के लिए निकल खड़ी होंगी...वो भी रात के वक़्त हम सबको बताये बग़ैर...

रतन की माँ : देख पुत्तर, मैन्नू सब पता है...ए गल ज़रूर है कि तुसी लोकां ने मैन्नू कुज नई दसया, बल्कि मेरे तों छिपाया है, लेकिन

ए हक़ीक़त है कि कुछ लोक मेरी वजहों तोहानू सारेयाँ नूं परेशान कर रहे ने।

जावेद : अरे माई वैसी धमकियाँ तो जाने कितने देते रहते हैं।

रतन की माँ : पुत्तर मेरी वजह नाल तुस्सी लोकां नूं कुछ हो गया तां मैं फिर किधरी दी नां रईं...एही वजह है कि मैं जाणा चाहदी हाँ।

सिकन्दर मिर्ज़ा : ***(दर्दनाक लहजे में)*** माई जब हमारा कोई ठिकाना नहीं था, जब हम परेशानी और तकलीफ़ में थे, जब हम ये भी न जानते थे कि लाहौर किस चिड़िया का नाम है तब आपने हमें बच्चों की तरह रखा, हम पर हर तरह का एहसान किया और आज जब हम इस शहर में जम चुके हैं तो क्या उन एहसानों को भूल जाएँ?

रतन की माँ : पुत्तर तू ठीक कहदां है, लेकिन मेरा वी ते कोई फ़र्ज़ है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : आपका फ़र्ज़ है कि आप अपने बेटे, बहू, पोते, पोती के साथ रहें...बस।

रतन की माँ : देख पुत्तर मैंनू की फ़र्क पैदा है? साठ तों ऊपर दी हो गयीं हाँ...आज मरी तां कल मरी...इत्थे लाहौर च मरां या दिल्ली च मरां...मैन्नू हुण मरना ही मरना है।

तन्नो : माई पहले तो आप ये मरने-वरने की बातें न करें...मरें आपके दुश्मन।

(तन्नो माई के गले में बाहें डाल देती है। माई उसे प्यार करती है।)

सिक-

न्दर

मिर्ज़ा : माई आपको हमसे आज एक वायदा करना पड़ेगा...बड़ा पक्का वायदा... (जावेद से) जावेद बेटे पहले तो बक्सा ऊपर ले जाओ और माई के कमरे में रख आओ।

जावेद : जी अब्बा।

(जावेद बक्सा लेकर चला जाता है।)

सिक-न्दर मिर्ज़ा : क़सम खुदा की आप चली जातीं तो हम पर क्या बीतती पता है आपको...हम शर्म से ज़मीन में गड़ जाते...हम किसी से आँखें मिलाने लायक़ न रह जाते...अरे हद है...

(रतन की माँ चुप हो जाती है और सिर झुका लेती है।)

हमीदा बेगम : हाय मेरा तो कलेजा दहल जाता है ये सोचकर कि हम सुबह उठते तो आप न होतीं...माँ जी हम पर बिल्कुल रहम न आया आपको...अब आप कहीं नहीं जाएँगी।

(जावेद लौटकर आता है और बैठ जाता है।)

तन्नो : दादी बोलो न.. क्यों हम लोगों को सता रही हो? कह दो कि नहीं जाओगी।

(रतन की माँ चुप रहती है। जावेद उठकर माई के पास आता है। माई के दोनों कंधे पकड़ता है। झुककर उसकी आँखों में देखता है और बहुत फ़र्मली कहता है)

जावेद : दादी, तुम्हें मेरी क़सम है, अगर तुम कहीं गयीं।

(रतन की माँ फूट-फूट कर रोने

लगती है और रोते-राते कहती है)

रतन की माँ : मैं किधरी नहीं जावांगी...किधरे नहीं... त्वाडे लोकां चों ही उट्ठांगी तां सिद्धे रब के कौल जावांगी, बस...

(तन्नो और जावेद को गले से लगाकर रतनल की माँ रोने लगती है। हमीदा बेगम भी अपने आँसू पोछती है। सिकन्दर मिर्ज़ा रतन की माँ के करीब आते हैं और अपनी आँखें पोंछते हैं।)

(अंतराल गायन)

नित नयी सोच में लगे रहना

हमें हर हाल में ग़ज़ल कहना

घर के आंगन में आधी-आधी रात

मिल के बाहम कहानियाँ कहना

शहर वालों से छुप के पिछली रात

चाँद में बैठ कर ग़ज़ल कहना

क्या ख़बर कब कोई किरन फूटे

जागने वालों जागते रहना

दृश्य : पन्द्रह

(आधी रात बीत चुकी है। अलीम के होटल में सन्नाटा है। वह एक बेंच पर पड़ा सो रहा है। नासिर और हमीद आते हैं)

नासिर : ***(हमीद से)*** लगता है ये तो सो गया... ***(ज़ोर से)*** अलीम...अरे भई सो गए क्या?

अलीम : अभी-अभी आँख लगी थी कि...नासिर साहब...आइए...

नासिर : सो जाओ...लेकिन यार चाय पीनी थी..

हमीद : भट्टी तो सुलग रही है।

नासिर : तो ठीक है यार तुम सोये रहो, हम लोग चाय बना लेंगे। क्यों हमीद।

हमीद : नासिर साहब बढ़िया चाय पिलाऊँगा।

नासिर : अमाँ अलीम एक कप तुम भी पी लेना।

अलीम : नींद उड़ जाएगी नासिर साहब।

नासिर : अमाँ नींद भी कोई परी है जो उड़ जाएगी...चाय पीकर सो जाना...और जो सोने का मूड़ न बने तो हमारे साथ चलना...लाहौर से मुलाक़ात तो रात में ही होती है।

हमीद : ***(हमीद पानी भट्टी पर रखता है)*** कड़क चाय पियेंगे नासिर साहब।

नासिर : भई हम तो कड़क के ही क़ायल हैं- कड़क चाय, चाय, कड़क आदमी, कड़क रात, कड़क शायरी...

(नासिर बेंच पर बैठ जाते हैं। हमीद चाय बनाने लगता है। अलीम भी उठकर बैठ जाता है।)

हमीद : कोई कड़क शेर सुनाइए।

नासिर : सुनो।

ग़म जिसकी मज़दूरी हो।

हमीद : ***(दोहराता है)*** ग़म जिसकी मज़दूरी हो।

नासिर : जल्द गिरेगी वो दीवार।

हमीद : वाह नासिर साहब वाह।

(अलीम दोनों के सामने चाय रखता है और खुद भी चाय लेकर बैठ जाता है।)

अलीम : नासिर साहब, पहलवान आपको बहुत पूछता रहता है, मिला?

नासिर : (शेर सुनाते हैं) जिनमें बूए वफ़ा नहीं नासिर ऐसे लोगों से हम नहीं मिलते।

हमीद : वाह साहब वाह...जिनमें बूए वफ़ा नहीं 'नासिर'।

नासिर : ऐसे लोगों से हम नहीं मिलते।

हमीद : आजकल लिख रहे हैं 'नासिर' साहब।

नासिर : भाई लिखने के लिए ही तो हम ज़िन्दा हैं, वरना मौत क्या बुरी है?

(जावेद की घबराई हुई आवाज़ आती है। वह चीख़ता हुआ दाख़िल होता है)

जावेद : अलीम मियाँ...अलीम मियाँ...

(जावेद परेशान लग रहा है। उसे देखकर तीनों खड़े हो जाते हैं)

नासिर : क्या हुआ जावेद?

जावेद : ***(रोनी आवाज़ में)*** माई का इंतिक़ाल हो गया।

नासिर : अरे, कैसे...कब?

जावेद : शाम को सीने में दर्द बता रही थीं...मैं डॉ. फ़ारुक़ को लेके आया था, उन्होंने इंजेक्शन और दवाएँ दीं...अचानक कुछ देर पहले दर्द बहुत बढ़ गया और...

(जावेद फूट-फूटकर रोने लगता है।)

नासिर : हमीद मियाँ ज़रा **हिदायत** साहब को ख़बर कर आओ...और करीम मियाँ से भी कह देना...जावेद तुम किधर जा रहे

हो।

जावेद : मैं तो अलीम को जगाने आया था... अब्बा की तो अजीब कैफ़ियत है...

अलीम : मरहूमा का यहाँ कोई रिश्तेदार भी तो नहीं है।

नासिर : अरे भाई हम सब उनके कौन हैं? रिश्तेदार ही हैं। अलीम तुम कब्बन साहब और तक़ी मियाँ को बुला लाओ...

(अलीम जाता है। उसी वक़्त हिदायत साहब, करीम मियाँ आते हैं।)

हिदायत : वतन में कैसी बेवतनी की मौत है।

नासिर : हिदायत साहब हम सब उनके हैं...सब हो जाएगा।

करीम : भाई लेकिन करोगे क्या।

नासिर : क्या मतलब।

करीम : भाई रामू का बाग़ जो शहर का शमशान था, वो अब रहा नहीं, वहाँ मकानात बन गए हैं।

हिदायत : ये तो बड़ी मुश्किल हो गयी।

(अलीम, कब्बन और तक़ी आते हैं।)

करीम : और शहर में कोई दूसरा हिन्दू भी नहीं है जो कोई रास्ता बताता।

हिदायत : अरे साहब हम लोगों को कुछ मालूम भी तो नहीं कि हिन्दुओं में क्या होता है?

(सिकन्दर मिर्ज़ा आते हैं। उनका चेहरा लाल है और बहुत ग़मज़दा लग रहे हैं।)

करीम : भई असली मुश्किल तो शमशान की है। जब शमशान ही नहीं तो आख़िरी रस्म कैसे अदा होगी।

कब्बन : हाँ ये तो बड़ी मुश्किल है।

तक़ी : मिर्ज़ा साहब आप कुछ तजवीज़ कीजिए।

सिकन्दर मिर्ज़ा : मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है...

जो आप लोगों की राय हो वही किया जाए।

हिदायत : भाई हम तो यही कर सकते हैं बड़ी इज़्ज़त और बड़े एहतेराम के साथ मरहूमा को दफ़न कर दें...इससे ज़्यादा न हम कुछ कर सकते हैं और न हमारे इख़्तियार में है।

नासिर : लेकिन माई हिन्दू थीं और उनको...

हिदायत : नासिर भाई हम सब जानते हैं...वो हिन्दू थीं लेकिन करें क्या? जब शमशान ही नहीं है तो क्या किया जा सकता है? आप ही बताइए?

(नासिर चुप हो जाते हैं।)

तक़ी : **हिदायत** साहब की राय मुनासिब है, मेरा भी यही ख़्याल है कि मोहतरमा की लाश को इज़्ज़त-ओ-ऐहतेराम के साथ दफ़न किया जाए...इनके वारिसान का तो पता है नहीं...वरना उनको बुलवाया जाता या राय ली जाती।

सिक-न्दर

मिर्ज़ा : जो आप लोग ठीक समझें।

कब्बन : अलीम मियाँ अप मस्जिद चले जाइए और खटोला लेते आइए। कफ़न का कपड़ा...हाजी साहब की दुकान बंद हो तो पीछे गली में घर है, वो अन्दर से ही कपड़ा निकाल देंगे।

(अलीम और जावेद चले जाते हैं।)

तक़ी : बड़ी ख़ूबियों की मालिक थीं मरहूमा... मेरे बच्चे को जब चेचक निकली थी तो रात-रात भर उसके सिरहाने बैठी रहा करती थीं।

हिदायत : अरे भाई उनके जैसा मददगार और ख़िदमत करने वाला मैंने तो आज तक देखा नहीं...ऐसी नेकदिल औरत... कमाल है साहब।

कब्बन : जब से उनके मरने की ख़बर मेरी बीबी ने सुनी है रोए जा रही है...अब कुछ तो ऐसी उनसियत होगी ही।

नासिर : (शेर पढ़ते हैं) ज़िन्दगी जिनके तसव्वुर से जिला पाती थी। हाय क्या लोग थे जो दामे अजल में आए।

(अलीम आता है।)

कब्बन : क्या कह रहे थे मौलवी साहब।

अलीम : कह रहे थे, अभी कुछ मत करना मैं ख़ुद आता हूँ।

तक़ी : मरहूमा का एक-एक लम्हा दूसरों के लिए ही होता था...कभी अपने लिए कुछ न माँगा...

(पहलवान आता है)

पहलवान : भई उना नू क्या ज़रुरत थी किसी से कुछ माँगने की...बड़ी दौलत थी उनके पास।

(सब पहलवान को घूरकर देखते हैं। कोई कुछ जवाब नहीं देता, उसी वक़्त मौलवी साहब आते हैं। जो लोग बैठे हैं वो खड़े हो जाते हैं।)

मौलाना : सलामुअलैकुम।

सब : वालेकुमस्सलाम।

मौलाना : रतन की वालेदा का इंतिक़ाल हो गया है।

हिदायत : जी हाँ।

मौलाना : आप लोगों ने क्या तय किया है?

हिदायत : हुज़ूर पुराना शमशान रामू का बाग़ तो रहा नहीं, और हम लोगों को हिन्दुओं का तरीक़ा मालूम नहीं, शहर में कोई दूसरा हिन्दू भी नहीं है जिससे कुछ पूछा जा सके...अब ऐसी हालत में हमें यही मुनासिब लगा कि मरहूमा को बड़ी इज़्ज़त और ऐहतेराम के साथ सुपुर्दे ख़ाक कर दिया जाए।

मौलाना : क्या मरने से पहले मरहूमा मुसलमान

हो गयी थीं।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जी नहीं।

मौलाना : तब आप उनको दफ़न कैसे कर सकते हैं?

पहलवान : ***(ग़ुस्से में)*** तो और क्या करेंगे।

मौलाना : ये मैं आप लोगों से पूछ रहा हूँ।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जनाब हमारी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा।

मौलाना : देखिए वो नेक औरत मर चुकी है। मरते वक़्त वो हिन्दू थी। उसके आख़िरी रसूम उसी तरह होने चाहिए।

पहलवान : ***(चिढ़कर)*** वाह ये अच्छी तालीम दे रहे हैं आप।

मौलाना : ***(उसे जवाब नहीं देते)*** देखिए वो मर चुकी है। उसकी मय्यत के साथ आप लोग जो सुलूक चाहें कर सकते हैं... उसे चाहे दफ़ना दीजिए चाहे टुकड़े-टुकड़े कर डालिए, चाहे ग़र्क़े आबे कर दीजिए...इसका अब उस पर कोई असर नहीं पड़ेगा...उसके ईमान पर कोई आँच नहीं आएगी... ***(ज़ोर देकर)*** लेकिन आप उसके साथ क्या करते हैं, इससे आपके ईमान पर ज़रूर फ़र्क़ पड़ सकता है।

(सब चुप हो जाते हैं।)

मुर्दा वो चाहे किसी भी मज़हब का हो, उसकी इज़्ज़त करना फ़र्ज़ है...और हम जब किसी का एहतेराम करते हैं तो उसके यक़ीन और उसके मज़हब को ठेस तो नहीं पहुँचाते?

नासिर : आप बजा फ़रमा रहे हैं मौलाना।

पहलवान : इस्लाम एइ कहता है? इस्लाम की यही तालीम है कि एक हिन्दू बुढ़िया के पीछे हम सब राम राम सत करें?

मौलाना : पुत्तर इस्लाम ख़ुदग़र्ज़ी नहीं सिखाता। इस्लाम दूसरे के मज़हब और जज़्बात का एहतेराम करना सिखाता है—अगर तुम सच्चे मुसलमान हो तो ये करके दिखाओ?

पहलवान : की करके दिखाओ?

मौलाना : रतन की माँ को...उसके मज़हब के हिसाब से...

पहलवान : ***(मौलाना की बात काटकर)*** वाह जी वाह...चंगी कही...यही लिखा है कुरान शरीफ़ में?

मौलाना : पुतर, जो मुसलमान नहीं हैं उनके साथ किया गया वायदा पूरा करना मुसलमान की शान है।

पहलवान : ***(गुस्से में)*** ये ग़लत बात है, कुफ़्र है।

मौलाना : पुत्तर गुस्सा और अक़्ल कभी एक साथ नहीं होते। **(कुछ ठहरकर)** तुममें से कितने लोग हैं जो ये कह सकें कि रतन की माँ तुम्हारे काम नहीं आई? कि तुम पर उसके एहसानात नहीं हैं? कि तुम लोगों की ख़िदमत नहीं की।

(कुछ नहीं बोलता।)

मौलाना : आज वो औरत मर चुकी है जिसके तुम सब पर एहसानात हैं, तुम सबको उसने अपना बच्चा समझा था, आज जब कि वो मौत के आग़ोश में सो चुकी है, तुम उसे अपनी माँ मानने से इनकार कर दोगे...और अगर वो तुम्हारी माँ है तो उसका जो मज़हब था उसका ऐहतेराम करना तुम्हारा फ़र्ज़ है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : आप बजा फ़रमाते हैं मौलाना...हमें मरहूमा के मज़हबी उसूलों के मुताबिक़ ही उनका कफ़न दफ़न करना चाहिए।

कुछ और लोग : हाँ, यही मुनासिब है।

मौलाना : फ़ज्र की नमाज़ का वक़्त हो रहा है। मैं मस्जिद जा रहा हूँ। आप लोग भी नमाज़ अदा करें। नमाज़ के बाद मैं मिर्ज़ा साहब के मकान पर जाऊँगा।

सिकन्दर मिर्ज़ा : मौलाना सबसे बड़ी मुश्किल ये है कि मरहूमा को जलाया कहाँ जाए क्योंकि क़दीमी शमशान तो अब रहा नहीं।

हिदायत : और जनाब इन लोगों की दूसरी रस्में क्या होती हैं, ये हमें नहीं मालूम?

मौलाना : देखिए शमशान अगर नहीं रहा तो रावी का किनारा तो है। हम मरहूमा की लाश को रावी के किनारे किसी ग़ैर आबाद और सुनसान जगह लेकर सुपुर्दे आतिश कर सकते हैं।

कब्बन : क्या ये उनके मज़हब के मुताबिक़ होगा?

मौलाना : बेशक। हिन्दू अपने मुर्दों को नदी के किनारे जलाते हैं और फिर ख़ाक दरिया में बहा देते हैं।

तक़ी : लेकिन और भी तो सैकड़ों रस्में होती होंगी...मिसाल के तौर पर कफ़न कैसे सिया जाता है।

नासिर : भई आप लोग शायद न जानते हों, अम्बाला में मेरे बहुत से दोस्त हिन्दू थे, उनके यहाँ कफ़न काटा या सिया नहीं जाता बल्कि कफ़न में मुर्दे को लपेटा जाता है।

हिदायत : उसके बाद?

तक़ी : भई उसके बाद तो ठठरी पर रखकर घाट ले जाते होंगे।

कब्बन : ठठरी कैसे बनती है?

मौलाना : ठठरी समझो ये एक क़िस्म की सीढ़ी होती है जिसमें कुछ डंडे लगे होते हैं।

कब्बन : तो ठठरी बनाने का काम तो किया ही जा सकता है...आप हज़रात कहें तो मैं बांस वग़ैरा लोकर ठठरी बनाऊँ।

सिक-न्दर

मिर्ज़ा : हाँ-हाँ ज़रूर।

(कब्बन बाहर निकल जाते हैं।)

तक़ी : लकड़ियों को रावी के किनारे पहुँचाने की ज़िम्मेदारी मैं ले सकता हूँ।

मौलाना : बिस्मिल्लाह तो आप रावी के किनारे लकड़ियाँ पहुँचवाइए।

(तक़ी भी बाहर चले जाते हैं।)

सिक-न्दर

मिर्ज़ा : मौलाना मुझे याद आता है कि हिन्दू मुर्दे के साथ कुछ और चीज़ें भी जलाते हैं... शायद आम की पत्तियाँ...

सिक-न्दर

मिर्ज़ा : ***(जावेद से)*** जावेद बेटा, तुम आम की पत्तियाँ ले आओ।

हिदायत : क्या उनके यहाँ मुर्दे को नहलाया भी जाता है।

मौलाना : ये मुझे इल्म नहीं?

नासिर : जी हाँ नहलाया जाता है।

हिदायत : कैसे?

नासिर : ये तो मुझे नहीं मालूम।

मौलाना : भई नहलाने से मुराद यही कि मुर्दा पाक हो जाये और उसके साथ कोई ग़लाज़त न रहे।

सिक-न्दर

मिर्ज़ा : जी हाँ और क्या...

मौलाना : तो मिर्ज़ा साहब ये काम तो घर ही में हो सकता है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : जी हाँ बेशक...देखिए मैं बेगम से कहता हूँ।

(सिकन्दर मिर्ज़ा चले जाते हैं।)

मौलाना : नासिर साहब और कोई रस्म याद आ रही है?

नासिर : हाँ जनाब...असली घी डालकर मुर्दा जलाया जाता है और बड़ा लड़का आग देता है।

मौलाना : मरहूमा का कोई लड़का तो यहाँ है नहीं।

नासिर : सिकन्दर मिर्ज़ा साहब को वो लड़के के बराबर मानती थीं। ये काम इन्हीं को करना चाहिए। और मौलाना हिन्दू मुर्दे के साथ हवन की चीज़ें भी जलाते हैं।

मौलाना : हवन की चीज़ों में क्या-क्या होता है?

नासिर : जनाब ये तो मुझ नहीं मालूम।

(सिकन्दर मिर्ज़ा आते हैं।)

मौलाना : मिर्ज़ा साहब हवन में क्या-क्या चीज़ें होती हैं, आपको मालूम है।

सिकन्दर मिर्ज़ा : नहीं ये तो नहीं मालूम।

मौलाना : देखिए अब अगर कोई रस्म रह भी जाती है तो उससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

(कब्बन ठठरी लेकर आते हैं। उसे सब देखते हैं।)

मौलाना : अन्दर भिजवा दीजिए।

(कब्बन ठठरी सिकन्दर मिर्ज़ा को दे देते हैं।)

मौलाना : जो चीज़ें बाक़ी रह गई हैं उन्हें मिर्ज़ा साहब आप हासिल कर लीजिए। सात बजे तक इंशाअल्लाह जनाज़ा ले चलेंगे।

कब्बन : मौलाना, जनाज़े के साथ राम नाम सत

है, यही तुम्हारी गत है। कहते हुए जाना पड़ेगा।

मौलाना : रहेगा नाम अल्लाह का...मौत बरहक़ है...मौत से न कोई बचा है...न कोई बचेगा...अच्छा तो मैं चलता हूँ।

(मौलाना के सब मंच से बाहर निकल जाते हैं)

(पहलवान जो अपने दोस्तों के साथ गुस्से में भरा कोने में बैठा हुआ सब देख-सुन रहा था अचानक सबके चले जाने के बाद उछलकर खड़ा हो जाता है और अलीम की गर्दन पकड़ लेता है।)

पहलवान : अलीमा मैं ऐ नहीं होण देना...किसी क़ीमत नहीं होण देगा...भावें मैनू...भावें मैनू...

(झपट कर अलीम का गला पकड़ लेता है।)

अलीम : अरे पहलवान मेरा गला तो छोड़ो...मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है।

(पहलवान गला छोड़ देता है।)

पहलवान : ओय असी भी जानते हाँ...इसे ने ठेका नहीं लेआ होया है इस्लाम दा...

अलीम : अरे तो मुझे क्या समझा रहे हो...कहो जाके उन लोगों से...

पहलवान : कहन सुनन नू होण रिया की है... अलीमा...खून खौल रिया है...पट्ठे फड़क रहे ने...क़सम खुदा दी...ए अ ऐंज नई बुझेगी...ऐंज नई बुझेगी...

(चीख़ता है) ए मौलवी है...मौलवी... काफ़िर औरत दे पीछे 'राम राम' कैंदा धूप रिया है... ***(गुस्से में बोला नहीं जाता)***

सिराज : साले पागल हो गए हैं।

पहलवान : ***(चीख़कर)*** ओ साले ओ ए पाकिस्तान है...पाकिस्तान...पाक ज़मीन...ऐनूं नापाक करन वाल्याँ दी मैं ऐसी तैसी कर देवांगा...ये मुल्ला मेरा खेल बिगाड़ता रिया है...आज मैं उस दा खेल बिगाड़ दांगा।

अनवार : सारा माल हड़प लिया साले सिकन्दर मिर्ज़ा ने...

पहलवान : मैं...मैं...पेट फाड़ के माल कड लवांगा... वेखदे जाओ...

(अंतराल गायन)

गये दिनों का सुराग़ लेकर किधर से आया किधर गया वो

अजीब मानूस अजनबी था मुझे तो हैरान कर गया वो

बस एक मोती-सी छब दिखाकर, बस एक मीठी-सी धुन सुनाकर

सितार-ए-शाम बनके आया, बरंगे ख़्वाबे सहर गया वो

वो मैकदे को जगाने वाला, वो रात की नींद उड़ाने वाला

ये क्या आज उसके जी में आई, के शाम होते ही घर गया वो

वो हिज्र की रात का सितारा वो हम नफ़स, हम सुख़न हमारा

सदा रहे उसका नाम प्यारा, सुना है कल रात मर गया वो

दृश्य : सोलह

(मंच पर अंधेरा है। रात का वक़्त है।)

(मस्जिद में मौलाना नमाज़ पढ़ रहे हैं। कोने में लैंप जल रहा है। धीरे-धीरे एक तरफ़ से ढांटा बांधे एक आदमी घुसता है और एक कोने में छिप जाता है। मौलाना नमाज़ पढ़ते रहते हैं। दूसरी तरफ़ से भी ढांटा बांधे एक आदमी घुसता है। मौलाना नमाज़ पढ़ चुके हैं और मुड़ना चाहते हैं। कि लैंप बुझा दिया जाता है।)

मौलाना : कौन?

(कोई जवाब नहीं आता)

मौलाना : कौन है, ये रौशनी किसने गुल कर दित्ती?

(कोई जवाब नहीं आता। मौलाना लैंप की तरफ़ बढ़ते हैं तो पीछे से एक तीसरा आदमी आ जाता है। मौलाना माचिस जलाते हैं तो उन्हें अपने तीन तरफ़ तीन ढांटे बाँधे लोग खड़े दिखाई देते हैं। तीली बुझ जाती है।)

मौलाना : तुम लोग कौन हो?

(कोई जवाब नहीं देता। तीनों एक-एक क़दम आगे बढ़ाते हैं।)

मौलाना : मुझे अपने नाम बताओ।

(कोई जवाब नहीं देता।)

मौलाना : तुम लोग जो भी हो मुसलमान हो...पूरे शहर में एक ही हिन्दू बुढ़िया थी वो कल गुज़र गइ। ...तुम मुसलमान हो...

(तीनों एक-एक क़दम और बढ़ते हैं)

मौलाना : ऐ ख़ुदा दा घर है...यहाँ ढांटे बांधने की क्या ज़रूरत है...वो तो सब देख ही रहा है।

(तीनों तेज़ी से आगे आते हैं।)

मौलाना : मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है...

(पहलवान चाकू निकाल लेता है। सिराज और अनवार मौलाना को झपट कर पकड़ लेते हैं।)

मौलाना : बचाओ...बचाओ...

(दो लोग मौलाना को पकड़ लेते हैं। पहलवान उनके पेट में चाकू मारता है।)

मौलाना : या अल्लाह...

(पहलवान दूसरा चाकू मारता है।)

मौलाना : या अल्लाह...

(मौलाना गिर पड़ते हैं। पहलवान उनके कपड़ों अपना हाथ और चाकू साफ़ करता है। पहलवान और उसके साथी बाहर निकल जाते हैं। पृष्ठभूमि से धीरे-धीरे आवाजें आती है "राम नाम सत है यही तुम्हारी गत है" कई बार ये आवाज़ें दोहराई जाती है। पृष्ठभूमि में चित्ता की आग की लपटें दिखाई पड़ती हैं। वहाँ कुछ लोग खड़े हैं। मंच पर अँधेरा है। अँधेरे में कुछ लोग मंच पर आते हैं। और मौलाना की लाश पर झुककर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगते हैं। मंच पर अँधेरा ही रहता है। बहुत गहरी, करुण और प्रभावशाली आवाज़ में गायन प्रारम्भ होता है।)

ख़ाक़ उड़ाते हैं दिन रात

मीलों फैल गये सहरा

प्यासी धरती जलती है

सूख गये बहते दरिया

(गायन की करुण आवाज़ के साथ पृष्ठभूमि से औरतों के रोने की आवाज़ गायन में शामिल हो जाती है जो क्रमश : बढ़ती जाती है। सभी आवाज़ें धीरे धीरे फेड आउट हो जाती हैं। मंच पर अंधेरो हो जाता है)

समाप्त

प्यासी धरती जलती है

सूख गये बहते दरिया

(गायन की करुण आवाज़ के साथ पृष्ठभूमि से औरतों के रोने की आवाज़ गायन में शामिल हो जाती है जो क्रमश : बढ़ती जाती है। सभी आवाज़ें धीरे धीरे फेड आउट हो जाती हैं। मंच पर अंधेरो हो जाता है)

समाप्त